Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्द और अर्थ

P.S
97
Y-S

रामचन्द्र वर्म्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

185478



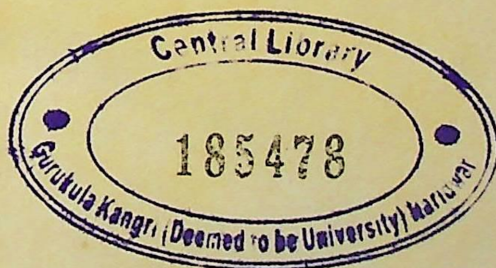
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

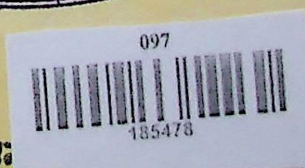
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्द और अर्थ

(अर्थ-विवेचन की कला और स्वरूप)

रामचन्द्र वर्म्मा


Central Library
185478
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar


097
185478

शब्द-लोक प्रकाशन
४७ लाजपत नगर,
बनारस २.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक
शब्द-लोक प्रकाशन
४७ लाजपत नगर,
बनारस २

कृष्ण जन्माष्टमी, सं० २०४२

मूल्य ५०.००

मुद्रक—
बजरङ्गबली गुप्त,
आर्यावर्त प्रेस,
जालिपा देवी, काशी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी भाषा के

उन अध्ययनशील और अन्वेषक जिज्ञासुओं को

जो

शब्दों के गम्भीर और गूढ़ आर्थी विवेचन

के लिए

अधिक उत्सुक भी हों

और

अधिक समर्थ भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

R.P.S
097
APY-S



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'सबद' की चोट लगी मोरे मन में,
बेधि गयो तन सारा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

प्रस्तावना

साधारणतः लोक-व्यवहार में किसी भाषा की महत्ता और श्रेष्ठता का मूल्यांकन मुख्यतः तीन बातों के आधार पर होता है। ये तीन बातें हैं:—प्रचार, साहित्य और शब्द-भंडार। पहले इन्हीं तीनों बातों के संबंध में कुछ कह लेना उचित होगा।

इधर कई सौ वर्षों से सारे भारत में हिन्दी का बहुत अधिक प्रचार होता चला आ रहा है, और इसी आधार पर स्वतंत्र भारत के संविधान में उसे राज-भाषा का पद मिला है। इससे बहुत पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती की कृपा से गुजरात, पंजाब, राजस्थान आदि में और तदुपरान्त महात्मा गांधी की कृपा से दक्षिण भारत में भी इसका बहुत अधिक प्रचार हो चुका था और ये तत्त्व हिन्दी को राज-भाषा का पद दिलाने में और अधिक सहायक हुए थे। और अब भारत के स्वतंत्र हो जाने पर तो इसका और भी अधिक प्रचार हो रहा है।

साहित्यिक दृष्टि से भी हिन्दी का पद्य-भंडार मध्य युग से ही निरंतर बढ़ता चला आ रहा था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के प्रयत्न से बहुत अधिक लोग हिन्दी की ओर आकृष्ट होने लगे और उसका गद्य-साहित्य भी दिन पर दिन बढ़ने लगा। जब संविधान में भी हिन्दी को राज-भाषा मान लिया गया तब हिन्दी में साहित्य-रचना का कार्य इतने प्रबल वेग से चल पड़ा कि अन्य भारतीय भाषाओं में कहीं उसकी समता दिखाई नहीं देती। इधर पन्द्रह वर्षों में हिन्दी में सभी विषयों के और सभी प्रकार के जितने अधिक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि हिन्दी ने आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है।

जब हिन्दी राज-भाषा मान ली गई तब उसके लिए विविध विषयों के वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी और भारत सरकार ने लाखों-करोड़ों रुपए व्यय करके बीसियों हजार नये शब्द बनाये। इस शब्द-रचना के कार्य में जो त्रुटियाँ और दोष रह गये थे उन्हें दूर करने के लिए भारत सरकार फिर से जाँच-पड़ताल करा रही है और उनमें आवश्यक संशोधन और सुधार करा रही है। सारांश यह कि प्रचार, साहित्य और शब्द-भंडार, तीनों की दृष्टि से हिन्दी निरन्तर उन्नति करती जा रही है और आशा की जाती है कि वह आगे भी इसी तरह करती रहेगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह तो हुई हिन्दी रूपी वृक्ष के ऊपरी और दृश्य भाग की बात जिसका तना हमें दिन पर दिन मोटा-ताजा होता हुआ दिखाई देता है और जिसकी हजारों शाखाएँ-प्रशाखाएँ हरे-भरे पत्तों, सुगंधित फूलों और स्वादिष्ट फलों से लदी हुई चारों ओर खूब तेजी से फैलती और बढ़ती हुई दिखाई देती हैं और जिसके द्वारा बहु-संख्यक भारतवासी अनेक प्रकार के लाभ उठाते हैं। परन्तु वृक्ष का एक अदृश्य मूल भाग भी होता है जो सदा मिट्टी के नीचे दबा रहता है और जिस पर सहसा कभी किसी का ध्यान भी नहीं जाता। लोग आम का फल भी खा लेते हैं; उसकी पत्तियों से बंदनवार भी बना लेते हैं और उसकी लकड़ी का भी अनेक प्रकार से उपयोग करते हैं। ये सब उसके उपभोक्ता ही कहे जायँगे। परन्तु वृक्षों की वास्तविक देखभाल करने के लिए ऐसे कुशल तथा चतुर मालियों की भी आवश्यकता होती है जो उनके मूल में खाद और पानी देते रहें और समय-समय पर उचित मात्रा में उन्हें धूप और हवा भी पहुँचाते रहें। हमारा आशय उस शब्द-समूह से है जिससे भाषा बनती है। खेद का विषय है कि हिन्दी में ऐसे लोगों का बहुत बड़ा अभाव दिखाई देता है जो हिन्दी रूपी वृक्ष के मूल अंश की देख-रेख करते हों, और उसे पुष्ट करने तथा सजीव रखने का प्रयत्न करते हों। बल्कि हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि हिन्दी का यह मौलिक क्षेत्र आरंभ से अब तक बहुत कुछ उपेक्षित ही रहा है अथवा कम-से-कम हम हिन्दी वाले उस ओर से उदासीन ही रहते आये हैं।

साठ वर्षों के अपने साहित्यिक जीवन का बहुत अधिक अंश मैंने भाषा और शब्दों के अध्ययन में ही बिताया है। उसके फलस्वरूप मेरी यह धारणा निरंतर पुष्ट होती रही है कि जिस रूप में शब्दों का आर्थी विवेचन और उनके सूक्ष्म भेदों तथा उपभेदों का तुलनात्मक निरूपण होना चाहिए वह अभी तक नहीं हुआ है। साथ ही मैं यह भी समझता हूँ कि अब वह समय आ गया है जब कि हिन्दी में ये दोनों काम वैज्ञानिक ढंग से और शास्त्रीय स्तर पर होने चाहिएँ। इधर बहुत दिनों से अनेक अवसरों पर मैंने हिन्दीवालों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न भी किया है। पर दुर्भाग्यवश मैं अभी तक इस प्रयत्न में सफल नहीं हुआ हूँ। यह काम कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्द-कोशों के द्वारा होना चाहिए। यह छोटी सी पुस्तिका इसी उद्देश्य से प्रकाशित की जा रही है कि हिन्दी के विद्वान् और साहित्यिक संस्थाएँ इन कामों की ओर या तो स्वयं ध्यान दें; अथवा शासन से यह अनुरोध करें कि वह इसकी समुचित व्यवस्था करे।

मैंने कुछ अवसरों पर अपने कई सुयोग्य मित्रों को यह कहते हुए सुना है कि हिन्दीवाले शब्द-कोषों का बहुत कम उपयोग करते हैं; और हिन्दी के कोषों का अधिकतर व्यवहार साधारण नवयुवक और विद्यार्थी ही करते हैं; वयस्क हिन्दी-भाषी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और विद्वान उनका बहुत ही कम उपयोग करते हैं। उनकी यह बात मुझे बहुत कुछ ठीक जँची; और मैं इसके कारणों पर विचार करने लगा। मुझे इसके कई कारण जान पड़े जिनका संक्षेप में यहाँ उल्लेख करना अनुचित न होगा। परन्तु उन कारणों का उल्लेख करने से पहले यह बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि यह बात हिन्दीवालों के लिए ही नहीं प्राय: सभी भारतीय भाषाओं के भाषी, वयस्क और विद्वान् सज्जनों के संबंध में भी कही जा सकती है। अब संक्षेप में वे कारण भी सुन लीजिए जो मेरे ध्यान में आये हैं।

मेरी समझ में पहला कारण भारतीय भाषाओं की लिपि-प्रणाली है। रोमन लिपि के सब अक्षर अलग-अलग होते हैं और उसमें न तो मात्राएँ होती हैं, न द्वित्व अक्षर और न संयुक्त वर्ण। इन्हीं विशेषताओं के कारण रोमन लिपि का अक्षर-क्रम बहुत ही सहज में और सुगमतापूर्वक समझ में आ जाता है; और रोमन लिपि के शब्द-कोषों में उद्दिष्ट शब्द ढूँढ़ने में किसी को कुछ भी कठिनता नहीं होती। परन्तु भारतीय लिपियों में मात्राओं, संयुक्त वर्णों आदि की जटिलताओं के कारण शब्द-कोषों में उद्दिष्ट शब्द ढूँढ़ निकालना बहुत कुछ कठिन होता है। मैंने अच्छे-अच्छे विद्वानों और सुयोग्य व्यक्तियों तक को शब्द-कोषों में शब्द ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर भटकते हुए देखा है। उन्हें आस-पास बैठे हुए लोगों से पूछना पड़ता है कि अमुक शब्द कहाँ मिलेगा; और जब तक शब्द-क्रम का कोई जानकार उनकी सहायता न करे तब-तक वे प्राय: असहाय से बने रहते हैं। मेरी इन बातों से किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि मैं भारतीय लिपियों पर किसी प्रकार का आक्षेप कर रहा हूँ। मैंने तो वही वास्तविक स्थिति बतलाई है जो अनेक अवसरों पर स्वयं मेरे देखने में आयी है।

आरम्भ से ही हिंदी-साहित्य की सेवा के क्षेत्र में, मेरा एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि भाषिक दृष्टि से हिंदी को उसी उच्च स्तर पर पहुंचाया जाय जिस पर संसार की अनेक अन्यान्य उन्नत भाषाएँ अवस्थित हैं। और यह काम तभी हो सकता है जब हम अपने शब्दों के आर्थी विश्लेषण को वैसा ही विशद रूप दें जैसा अन्य उन्नत भाषाओं में उनके शब्दों को प्राप्त है। यदि आप आक्सफोर्ड और वैब्स्टर सरीखे प्रामाणिक कोश उठाकर देखें तो उनमें आपको at, on और the सरीखे छोटे छोटे शब्दों के आशयों और प्रयोगों के ऐसे सूक्ष्म विश्लेषण मिलेंगे कि आप चकित हो जायँगे। उन्हीं के आदर्शों पर चलकर मैंने अभी, ऊपर, और सरीखे छोटे-छोटे हिंदी शब्दों के आशयों और प्रयोगों के विश्लेषण का यत्किंचित् प्रयत्न किया है। इस प्रकार के विवेचनों से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हमारे यहाँ के बहुत ही छोटे और साधारण शब्द भी अभिप्रायों और आशयों के ऐसे भंडार हैं जिनका अन्वेषण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे लिए बहुत ही आवश्यक है। भले ही हिंदी-भाषी अपनी भाषा के अभ्यस्त होने के कारण ऐसे विवेचनों की आवश्यकता या महत्त्व न समझते हों परन्तु अन्य भाषा-भाषियों और विदेशियों को अपनी भाषा के शब्दों के प्रयोगों से भी और उसकी आर्थी क्षमता से भी परिचय कराने के लिए ऐसे विवेचन बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे। मुझे आशा है कि हिंदी के अधिकारी और प्रतिष्ठित विद्वान् मेरे इस निवेदन पर उक्त दृष्टि से विचार करने की कृपा करेंगे।

दूसरा कारण यह है कि हिन्दी में भी और अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी अभी तक उत्कृष्ट कोटि के ऐसे शब्द-कोशों की रचना ही नहीं हुई है जो अच्छे विद्वानों अथवा सुशिक्षितों की जिज्ञासाओं की ठीक और पूरी तरह से तृप्ति कर सकें। जैसा कि मैं आगे चलकर बतलाऊँगा, कदाचित् हमारी साहित्यिक चेतना के विकास में अभी ऐसे उत्कृष्ट शब्द-कोशों की रचना का समय आने को ही है। बल्कि यों कहना चाहिए कि वह समय हमारे सिर पर आ गया हैं। हमें चाहिए कि हम उसे पहचानें और उसका स्वरूप समझकर अपनी भाषा की इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की ओर ध्यान दें; और उसकी पूर्ति का प्रयत्न करें।

तीसरा कारण यह है कि भाषा सब जगह साधारणतः दो ही प्रकार से सीखी-सिखाई जाती है। बच्चे आरंभ में केवल दूसरों के अनुकरण पर शब्दों का उच्चारण करना सीखते हैं और उसी अनुकरण के आधार पर वे उनके अर्थ समझते और प्रयोगों के अभ्यस्त होने लगते हैं। न तो उनमें शब्दों के अर्थ और आशय ठीक तरह समझने की योग्यता या शक्ति ही होती है और न उनके अभिभावक या आरंभिक शिक्षक ही इस योग्य होते हैं कि उन्हें शब्दों के ठीक-ठीक अर्थ और आशय पूरी तरह से बतला सकें। कुछ और बड़े होने पर जब उन्हें अपनी भाषा के कठिन शब्दों का ज्ञान कराया जाता है, अथवा अन्य भाषाएँ सिखाई जाती हैं तब पर्यायों का सहारा लिया जाता है। Cat माने बिल्ली, dog माने कुत्ता और horse माने घोड़ा रटकर अँगरेजी आदि परकीय तथा स्वदेशी भाषाएँ सीखी जाती हैं। उन्हें 'उत्तम' का अर्थ अच्छा या बढ़िया और 'निकृष्ट' का अर्थ खराब या बुरा बताकर चलता किया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रियाओं का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि शिक्षित समाज के बहुत अधिक लोग जीवन भर अनुकरण, अभ्यास और पर्यायों की छाया में ही पलते रहते हैं। शब्दों के अर्थों और आशयों के सूक्ष्म विवेचन और पर्यायों के पारस्परिक आर्थी भेद-प्रभेद आदि समझने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। शिक्षितों में से जो लोग साहित्य-प्रेमी या साहित्य-सेवी होते हैं वे भी प्रायः इस तरह की बातों से अलग और दूर ही रहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिणाम यह होता है कि भाषिक और शब्दार्थिक क्षेत्रों में बहुत से लोग इन्हीं आरम्भिक परिस्थितियों में अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं।

इसी के साथ एक बात और है। मनुष्यों की तरह भाषा का भी जन्म होता है, शैशव और बाल्यावस्था होती है, यौवन होता है, प्रौढ़ता और वयस्कता होती है, और वृद्धावस्था तथा उसके उपरान्त मृत्यु भी होती है। अपने जन्म के समय भाषा उसी प्रकार साहित्य से कोरी और रहित होती है जिस प्रकार मनुष्य जन्म के समय भाषा से कोरा और रहित होता है। मनुष्यों के शैशव और बाल्यकाल की तरह भाषा के ये आरम्भिक काल भी प्रायः किस्से-कहानियों में ही बीतते हैं। अपनी किशोरावस्था और युवावस्था में भाषा अन्यान्य उन्नत भाषाओं के अनुकरण पर चलती हुई साहित्यिक दृष्टि से थोड़ी बहुत पुष्ट और सम्पन्न होती है। इन अवस्थाओं में काव्यों, नाटकों, उपन्यासों आदि की प्रचुरता तो होती ही है; आलोचनात्मक दृष्टि से नये नये तथ्यों का अनुसंधान और नये नये मानों तथा मूल्यों का अन्वेषण होता है। परन्तु ये सब काम या तो कुतूहल शान्ति के लिए होते हैं या मनोरंजन मात्र के लिए। हमारी हिन्दी भाषा की ही नहीं भारत की अन्यान्य आधुनिक उन्नत तथा प्रगतिशील भाषाएँ भी अभी बहुत कुछ इसी अवस्था में चल रही हैं।

अपनी यह अवस्था पार कर चुकने पर जब भाषाएँ प्रौढ़ और वयस्क होती हैं तब उनमें उच्च कोटि के तात्त्विक, दार्शनिक और सैद्धांतिक विषयों के साहित्य का सृजन होता है। इसी प्रौढ़ावस्था में अथवा पूर्ण वयस्कता प्राप्त होने पर लोगों का ध्यान भाषिक और शाब्दिक अनुसंधानों की ओर जाता है। अपनी किशोरावस्था और युवावस्था में हिन्दी ने पाश्चात्य देशों की अनेक उन्नत भाषाओं के अनुकरण पर भाषा-विज्ञान (Philology) की ओर थोड़ा-बहुत ध्यान दिया था और जिन लोगों ने इस विषय का कुछ सामान्य सा भी अध्ययन कर लिया था उनका हिन्दी में यथेष्ट आदर और सम्मान हुआ था और अब भी होता है। परन्तु जिस प्रकार सैकड़ों-हजारों वैज्ञानिक क्षेत्रों में पाश्चात्य देशों ने कल्पनातीत उन्नति की है, उसी प्रकार भाषिक क्षेत्र में भी वे इतने अधिक आगे बढ़ गये हैं जिसका हमें कदाचित् ही कुछ परिचय प्राप्त हुआ हो। इस अवसर पर हम अपने एक नवयुवक और सुयोग्य विद्वान् मित्र श्री द्वारिकेश जी के अभी हाल के ही एक पत्र की कुछ बातें उद्धृत करना चाहते हैं। श्री द्वारिकेश जी इन दिनों शिकागो विश्वविद्यालय में हिन्दी भाषा के प्राध्यापक हैं और हिन्दी कृदन्तों के संबंध में अनुसंधान का बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं। अपने ५ अप्रैल, ६५, के पत्र में उन्होंने लिखा था—"हिन्दी की समस्या राजनीतिक ही नहीं—practical (व्यावहारिक) भी है। राजनीतिक उतनी ही, जितना कि लोग चिल्लाते हैं। उतनी कठिनाई नहीं है हिन्दी सीखने में; अंग्रेजी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की अपेक्षा तो बहुत ही कम। practical (व्यावहारिक) इसलिए कि हिन्दी वाले हिन्दी को जितना सरल समझते हैं वह न तो उतनी सरल ही है और न "हिन्दी-हिन्दी" चिल्लाने से प्रचार में ही आ सकती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी का प्रचार केवल traind (प्रशिक्षित) और scientific linguists (वैज्ञानिक भाषातत्त्वज्ञ या भाषा-शास्त्री) ही कर सकते हैं जिनकी भारत में कोई सलाह नहीं ली जाती। दूसरा भ्रम यह है कि भारत में philologist (भाषा-विज्ञानी) को ही linguist (भाषा-तत्त्वज्ञ या भाषा-शास्त्री) समझा जाता है। ....इन philologists (भाषा-विज्ञानियों) का एक समय था twenties (वर्तमान शताब्दी का तीसरा दशक)। किन्तु इनमें से किसी ने अपने को आधुनिक नहीं बनाया। अतः हिन्दी प्रचार समस्या का हल इन लोगों के बूते से बाहर है। Linguistics (भाषा-तत्त्व या भाषा-शास्त्र) एक विज्ञान है। यहाँ भौतिकी, रसायन शास्त्र आदि विज्ञानों में इसे भी स्थान मिला है। जब ये विज्ञान चन्द्र-लोक की सैर कर रहे हैं तो फिर कल्पना करें कि Linguistics (भाषा-तत्त्व या भाषा शास्त्र) ने आज कितनी उन्नति कर ली होगी। उतनी ही चन्द्रलोक पहुँचने तक की। भारत में Contrastive study (वैषम्यात्मक अध्ययन) की परम्परा का मजबूती से स्थापित किया जाना अत्यावश्यक है। भारत के सभी हिन्दी क्षेत्रों से आये हुए linguists (भाषा तत्त्वज्ञ या भाषा-शास्त्री) यहाँ आकर विश्वविद्यालयों में सम्मान पा रहे हैं किन्तु भारत के किसी विश्वविद्यालय ने उन्हें खोजने तथा बुलाने का प्रयत्न नहीं किया है। हिन्दी वालों को चाहिए कि वे इन भाषा शास्त्रियों को खोज-खोजकर बुलावें और उचित सम्मान दें। अभी तो भारत की परम्परा इस क्षेत्र में पाणिनी युग से आगे नहीं बढ़ी है। यह स्वीकार करने में संकोच नहीं कि इस क्षेत्र में भी भारत अभी आदि अवस्था में है।"

मैं न तो भाषा-विज्ञानी हूँ और न भाषा-तत्त्वज्ञ या भाषा-शास्त्री। हाँ, इतना अवश्य है कि बाल्यावस्था से ही भाषा और शब्दों के अध्ययन के प्रति मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति और रुचि रही है। और अब तक मैं तत्संबंधी कामों में ही लगा रहा हूँ। भाषिक दृष्टि से हिन्दी की जो दुरावस्था मेरे देखने में आई उसका यत्किंचित प्रतिकार करने के लिए मैंने बीसियों वर्ष पूर्व "अच्छी हिन्दी" और "हिन्दी प्रयोग" नामक पुस्तकें लिखी थीं। सौभाग्यवश सन् १९११-१२ से ही मुझे "शब्द-सागर" के सम्पादन विभाग में स्थान मिल गया था और उसके संपादन के ठेठ अंत तक अर्थात् सन् १९२९ तक मुझे शब्दों के सूक्ष्म अर्थों और अर्थ-भेदों के अध्ययन का अच्छा अवसर मिला था। हिन्दी भाषा का स्वरूप सजाने-सँवारने के प्रयत्न में ही मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि "हिन्दी शब्द सागर" में शब्दों के आर्थी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवेचन का जो शुभारंभ हुआ था वह उस समय को देखते हुए तो बहुत अच्छा भी था और बहुत अधिक भी। परन्तु अधिक विचार करने पर मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि वह विवेचन आरम्भिक ही था और इसी लिए हिन्दी की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं को देखते हुए इस क्षेत्र में बहुत अधिक आगे बढ़ने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ काम तो मैंने 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में किया था और इधर १०-१२ वर्षों में बहुत कुछ काम मैंने "मानक हिन्दी कोश" में किया है। "मानक हिन्दी कोश" का कार्य आरंभ करने से कुछ पहले ही मेरा ध्यान पर्यायकी की ओर जा चुका था और मैंने पहले तो अपनी "शब्द-साधना" नामक पुस्तक में और तदुपरांत "शब्दार्थ-मीमांसा" नामक पुस्तक में लगभग दो हजार शब्दों के संबंध में यह बतलाने का प्रयत्न किया था कि जिन शब्द-वर्गों के शब्दों को लोग बहुत-कुछ पर्याय या समानार्थक समझते हैं उनमें परस्पर अर्थ, आशय, प्रयोग और भाव की दृष्टि से कितने और कैसे सूक्ष्म अंतर हैं। इतना सब कुछ कर चुकने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि भाषिक दृष्टि से हिन्दी की दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण और मौलिक आवश्यकताएँ हैं। एक तो यह कि सभी शब्दों के अर्थों और आशयों का गंभीर और गूढ़ अध्ययन करके उनका ठीक ठीक निरूपण और विवेचन किया जाना चाहिए; और दूसरे, जो शब्द साधारणतः लोक में एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं उनके अर्थों के सूक्ष्म अंतरों और भेदों का पूरा पूरा स्पष्टीकरण होना चाहिए।

भाषिक दृष्टि से हिन्दी की उक्त दोनों आवश्यकताएँ पूरी हो जाने पर अनेक प्रकार के और बहुत बड़े लाभ होंगे। अभी कुछ दिन पहले (फरवरी '६५ में और उसके बाद) दक्षिण भारत में विशुद्ध राजनीतिक और स्वार्थिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए अँगरेजी के समर्थकों ने हिन्दी के विरोध का जो प्रबल आन्दोलन चलाया था उसके प्रसंग में प्रायः कुछ बड़े-बड़े लोग यह भी कहते थे कि हिन्दी जैसी अनुन्नत और अविकसित भाषा को अँगरेजी का स्थान न तो मिल ही सकता है और न मिलना ही चाहिए। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जब हम भाषिक दृष्टि से हिंदी की उक्त दोनों मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेंगे तो किसी को यह कहने का साहस नहीं होगा कि हिन्दी अनुन्नत और अविकसित भाषा है। आज-कल के सभ्य और सुशिक्षित देशों और समाजों में वस्तुतः वही भाषा उन्नत और विकसित मानी जाती है जिसके प्रायः सभी प्रमुख शब्दों का पूरा आर्थी विवेचन भी हो और पर्यायों के पारस्परिक अन्तरों का ठीक ठीक निरूपण और सीमांकन भी हो ऐसे विवेचनों से दूसरा बड़ा लाभ यह होगा कि आनेवाली पीढ़ियों को एक ओर तो पुष्ट और प्रौढ़ भाषा लिखने की शिक्षा मिलेगी और दूसरी ओर उन्हें वह नया दृष्टिकोण भी प्राप्त होगा जिससे वे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दों के आर्थी अंतरों और भेदों-प्रभेदों पर नये ढंग से विचार करना सीखेंगे। तीसरा लाभ यह होगा कि इस प्रणाली से हम यह भी निश्चित कर सकेंगे कि हमारे शब्दों का आर्थी विकास कैसे हुआ है और उनका ऐतिहासिक स्वरूप क्या है। चौथा और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि अन्य भाषा-भाषियों तथा विदेशियों में हम हिन्दी का प्रचार अधिक सहज में और अधिक सुगमता-पूर्वक कर सकेंगे। इस प्रकार के हमारे सब विवेचन भाषा-तत्त्वज्ञों या भाषा-शास्त्रियों के लिए बहुत सी आवश्यक और उपयोगी सामग्री भी प्रस्तुत कर सकेंगे और भारतीय भाषाओं के लिए एक नया आदर्श भी स्थापित कर सकेंगे। इन्हीं सब कारणों से मेरा यह विनम्र आग्रह और निवेदन है कि हिन्दीवालों को तत्काल इन कामों की ओर ध्यान देना चाहिए।

मानक हिन्दी कोश का संपादन करते समय अनेक महत्त्वपूर्ण शब्दों के संबंध में बहुत-सी नई बातें मेरे ध्यान में आती थीं। इनमें से कुछ शब्दों के संबंध में कभी-कभी मैं कुछ छोटे लेख भी लिखकर स्थानीय दैनिक 'आज' में प्रकाशित कराया करता था। प्रस्तुत पुस्तक का मूल अंश जिसका शीर्षक 'अर्थ विवेचन का स्वरूप' है उन्हीं लेखों का संग्रह है। मानक हिन्दी-कोश के कई खंडों के प्रकाशन के बाद भी कुछ शब्दों के संबंध में जो नई बातें मेरे ध्यान में आईं उनका भी मैंने इन लेखों में यथा स्थान समावेश कर दिया है। पुस्तक का उक्त अंश देखने पर पाठक सहज में यह समझ सकेंगे कि हिन्दी के अभी, और, क्या, पड़ना सरीखे छोटे-छोटे शब्दों में भी कितने ऐसे गंभीर और गूढ़ अर्थ तथा आशय भरे पड़े हैं, जिनकी ओर अभी तक किसी कोशकार या वैयाकरण का ध्यान नहीं गया है। आँख, पैर, मुँह और हाथ संबंधी लेखों से पाठक यह समझ सकेंगे कि मुहावरों का विवेचन किस प्रकार नये ढंग और कई दृष्टि से होना चाहिए। ऊपर और पर; जीवन और प्राण; पर्याप्त और यथेष्ट; झेलना, सहना और भोगना शीर्षक लेखों से पाठकों को यह पता चलेगा कि छोटे-छोटे और साधारण शब्दों के अर्थों का ध्यान रखते हुए उनके प्रयोग के समय हमें कितना सावधान रहना चाहिए। ये सब बातें पर्यायकी के क्षेत्र की हैं। अँगरेजी, जर्मन, फ्रांसीसी और रूसी आदि पाश्चात्य भाषाओं में इस प्रकार के बहुत से काम हो चुके हैं, जो हमारे लिए आदर्श और मार्ग-दर्शक हो सकते हैं। उक्त भाषाओं में ऐसे कामों का क्रम सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है और अब भी सैकड़ों-हजारों आदमी नित्य इसे आगे बढ़ाने में लगे रहते हैं। हमारी हिन्दी में भी और अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी इस प्रकार के काम होना बहुत अधिक आवश्यक है।

हिन्दी-कोश-रचना के क्षेत्र में मैंने जो थोड़ा-बहुत अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था और जो प्रणालियाँ तथा सिद्धान्त स्थिर किए थे उन सब के सारांश के रूप में प्रायः १२ वर्ष पूर्व मैंने 'कोश-कला' नाम की एक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थी जो अब अप्राप्य है। उसके बाद 'मानक हिन्दी कोश' का संपादन करते समय जो और बहुत सी नई बातें मेरे ध्यान में आई थीं वे सब बातें भी यथा-स्थान बढ़ाकर शीघ्र ही मैं कोश-कला का दूसरा नवीन, परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण प्रकाशित कराना चाहता हूँ जिसकी पूरी पांडुलिपि मेरे पास प्रस्तुत हो चुकी है। उसी दूसरे परिवर्द्धित संस्करण में आर्थी विवेचन के प्रकार, प्रक्रिया और स्वरूप बतलानेवाला 'अर्थ-विचार' शीर्षक जो प्रकरण है वह भी इस पुस्तक में एक स्वतंत्र अध्याय के रूप इसलिए सम्मिलित कर दिया गया है कि विचारशील पाठक अर्थ-विवेचन संबंधी, मेरी प्रणालियों, विचारों, और सिद्धान्तों से परिचित हो सकें। हो सकता है कि मेरे विवेचन में भी और विवेचन प्रणाली में भी विचारशील विद्वानों को कुछ त्रुटियाँ या दोष दिखाई पड़ें पर उनके लिए वे यही समझकर मुझे क्षमा कर दें कि हिन्दी में इस तरह का काम बिलकुल नया और पहला है। जो महानुभाव मुझे मेरी त्रुटियों और दोषों से अवगत करने की कृपा करेंगे उनका मैं विशेष रूप से अनुगृहीत भी होऊँगा और उनकी सूचनाओं से लाभ भी उठाऊँगा।

वर्तमान युग अनुसंधानों का है। सभी क्षेत्रों, सभी दिशाओं और सभी विषयों में बहुत बड़े-बड़े अनुसंधान हो रहे हैं, और हर साल उनमें से प्रत्येक के लिए लाखों-करोड़ों रुपए व्यय किये जाते हैं और नये विद्यार्थियों को उनका विशेषज्ञ बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ तक कि कीड़े-मकोड़ों और पेड़-पौधों तक के अंगों और उपांगों के अध्ययन में भी अच्छे-अच्छे विद्वान् अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं और अपने निकाले हुए निष्कर्षों से दिन पर दिन ज्ञान का भंडार बढ़ाते चलते हैं। और एक हम हिन्दी वाले हैं जो अपनी भाषा और उसका स्वरूप प्रस्तुत करनेवाले शब्दों के अर्थों, भावों और व्यंजन-शक्तियों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझते। मेरी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दी में शब्दार्थ-विवेचन का यह काम वैज्ञानिक ढंग से, व्यवस्थित रूप में और शास्त्रीय स्तर पर चलाया जाय—इसे शब्दार्थ-दर्शन या शब्दार्थ-विज्ञान का पद प्राप्त हो।

हिन्दी में 'मानक कोश' और 'शब्दार्थ मीमांसा' जैसे काम कुछ क्षेत्रों में जिस उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखे गये हैं वह मेरा ही जी जानता है। अनेक अवसरों पर कुछ संबद्ध अधिकारियों के द्वारा हिन्दी के हित-अहित का विचार छोड़ कर केवल व्यक्तिगत राग-द्वेष, अधिकार-प्रदर्शन आदि के फेर में पड़कर इन कार्यों में समय-समय पर अनेक बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ और बाधाएँ खड़ी की जाती रही हैं। यदि मेरे स्थान पर कोई और होता तो वह हताश होकर इन कामों को बीच में ही अधूरा छोड़ देता और किसी दूसरे काम में लग जाता। परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा थी कि इस प्रकार के काम भाषिक दृष्टि से हिन्दी की ठोस, वास्तविक और सच्ची

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेवा के अंतर्गत आते हैं। मैं यह भी समझता था कि आपाधापी के वर्त्तमान युग में भले ही कुछ लोग ऐसे कामों को उपेक्ष या तुच्छ समझा करें परन्तु आगे चलकर वह समय भी अवश्य आवेगा जब लोग ऐसे कामों की आवश्यकता प्रतीत करेंगे। इसलिए कुछ तो मैं अपने इन विचारों के कारण भी और कुछ स्वान्तः सुखाय भी निरंतर इन कामों में लगा रहा और जैसे-तैसे इन्हें मूर्त रूप दे सका हूँ और भाषा तथा शब्दों के संबंध में अपने तुच्छ अनुभव और ज्ञान का निचोड़ हिन्दी भाषियों की सेवा में अर्पित कर सका हूँ। साथ ही दूसरी ओर कुछ ऐसे उदार गुणग्राही और सहृदय सज्जन भी थे जो इन कामों का वास्तविक स्वरूप देख और समझकर इनका यथेष्ट आदर भी करते थे और मुझे बहुत कुछ प्रोत्साहन भी देते थे। बीच-बीच में जब कभी मैं कई-कई दिन लगाकर किसी छोटे और सामान्य शब्द का विशद और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता था और अपने कुछ अंतरंग मित्रों को सुनाता था तो कभी परम चकित होकर और कभी परम प्रसन्न होकर वे उसकी यथेष्ट प्रशंसा तो करते ही थे पर साथ ही मुझसे यह भी पूछ बैठते थे—आखिर आप इतनी सिरपच्ची करके यह सारा परिश्रम और प्रयत्न किनके लिए करते हैं? मैं उत्तर देता था—आनेवाली पीढ़ियों के लिए। एक अवसर पर 'मानक कोश' के कुछ शब्दों का विवेचन अच्छी तरह देख-सुन और समझकर मेरे आदरणीय मित्र श्री डा० धीरेन्द्र वर्मा ने कहा था— "वर्मा जी, हिन्दी में यह काम दूसरा कोई नहीं कर सकता। पर हिन्दीवाले इसका आदर नहीं करेंगे। आदर करेंगे ऐसे अन्य भाषा-भाषी और विदेशी लोग जो हिन्दी शब्दों का गंभीर अध्ययन करना चाहेंगे।" और एक दृष्टि से उनका यह कथन अक्षरशः सत्य भी था। मानक कोश में अच्छा, अभी, आन, उड़ना, ऊपर, और काटना, क्या, पड़ना, सरीखे जिन परम प्रचलित शब्दों के विवेचन और आर्थी निरूपण का जो बिलकुल नया काम किया गया है उनके लिए हिन्दीवाले कभी शब्दकोश उठाकर देखेंगे भी नहीं; भले ही वे कोश के दोष ढूंढ़ने में बहुत-सा समय लगा दें।

यदि मेरी उक्त बातों से कुछ सज्जनों को चोट पहुँचती हो तो मैं बहुत ही नम्रतापूर्वक उनसे क्षमा माँगता हूँ। सच पूछिए तो इस क्षेत्र में जो कुछ होना चाहिए उसकी तुलना में अभी मैं कुछ भी नहीं कर पाया हूँ। अभी इस प्रकार के कामों के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र मुझे अपने सामने बिलकुल खाली पड़ा हुआ दिखाई देता है। वह क्षेत्र हरा-भरा होकर हिन्दीवालों को सुगन्धित फूल, मीठ फल और शीतल तथा सुखद छाया दे यही मेरी हार्दिक कामना है।

शब्द-लोक
कृष्ण जन्माष्टमी, सं० २०२२ } रामचन्द्र वर्म्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ-विवेचन की कला

शब्दों और अर्थों के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन करना मूलतः निरुक्त या भाषा-विज्ञान का काम है। निरुक्त के बाद साहित्य-शास्त्र में कुछ दूसरी दृष्टि से यह विवेचन और अधिक पल्लवित होता है, जहाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के आश्रय से इस विषय का और भी सूक्ष्म विचार किया जाता है। परन्तु कोशकार को भी शब्दों और अर्थों से बहुत काम पड़ता है, बल्कि यों कहना चाहिए कि उसके सारे काम का अधिकांश शब्दों और उनके अर्थों से ही संबद्ध होता है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि कोशकार शब्दों और अर्थों के सैद्धान्तिक सम्बन्ध वाले क्षेत्र से आगे बढ़कर उनके क्रियात्मक सम्बन्ध वाले क्षेत्र में प्रविष्ट होता है, जहाँ उसका दृष्टि-कोण बहुत कुछ बदल कर बिलकुल नया और स्वतंत्र हो जाता है। यहाँ हम इस विषय का उसी नये दृष्टि-कोण से विचार करते हुए यह बतलाना चाहते हैं कि एक आभिधानिक या कोशिक के कार्य के लिए शब्दों के अर्थ कितने प्रकार के होते हैं अथवा अर्थ के विचार से कितने प्रकार या वर्ग होते हैं। इसी के साथ इस बात का भी विचार हो जायगा कि शब्दों और अर्थों के क्रियात्मक सम्बन्ध वाले क्षेत्र में कोशकार कहाँ तक और क्या काम कर सकता है, अथवा उसे कितना और कैसा काम करना चाहिए।

शब्द-कोश का वास्तविक महत्त्व उसमें दिये हुए शब्दों के अर्थों और व्याख्याओं पर आश्रित है, क्योंकि उसका मुख्य उपयोग अर्थ और परिभाषा या व्याख्या जानने के लिए ही होता है। कभी-कभी लोग शब्दों के शुद्ध रूप, अक्षरी, निरुक्ति, लिंग, शब्द-भेद आदि जानने के लिए भी कोशों का सहारा लेते हैं, पर कोश का यह उपयोग अर्थों वाले उपयोग की तुलना में गौण ही होता है। अतः हम कह सकते हैं कि शब्द वस्तुतः शब्द-कोश के शरीर मात्र के रूप में होते हैं, उसके प्राण या आत्मा का स्थान अर्थों और व्याख्याओं को ही प्राप्त है। जिन कोशों में शब्दों के अर्थ और व्याख्याएँ बिलकुल ठीक, शुद्ध और स्पष्ट न हों और जिनके उपयोग से पाठकों की शंकाओं का निवारण तथा ज्ञान की वृद्धि न हो, वे कोश बहुत कुछ निर्जीव या अल्प-प्राण होते हैं।

अच्छे शब्द-कोश का उपयोग सभी तरह के लोग करते हैं, जिनमें बहुत से अन्य भाषा-भाषी भी होते हैं। यह ठीक है कि हिन्दी-शब्द-कोश का उपयोग अधिकतर हिन्दी-भाषी ही करेंगे। पर उसका उपयोग करनेवाले अन्य भाषा-भाषियों की संख्या भी कम न होगी। विशेषतः आज-कल की परिस्थिति में, जब कि हिन्दी राज-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषा बन गई है और उसका अध्ययन तथा प्रचलन भारत के सभी राज्यों में पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हो रहा है और विदेशों में दूर-दूर तक होने लगा है, हिन्दी के कोशों का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है। अतः हिन्दी के भावी कोशकारों को इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि हमारे दिये हुए अर्थों और व्याख्याओं से अन्य भाषा-भाषी भ्रम में न पड़ें और उनसे ठीक और पूरा लाभ उठा सकें। बल्कि हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हमारे शब्द-कोशों से भी उनका वैसा ही सन्तोष तथा समाधान हो, जैसा अन्य उन्नत भाषाओं के कोशों से होता है।

अब हम कुछ उदाहरण देकर अपना आशय स्पष्ट करना चाहते हैं। मान लीजिए कि आप कोश में "भार्या" शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। यदि उसमें आपको उसका अर्थ मिले "औरत" या "स्त्री" तो क्या यह अर्थ ठीक होगा? कदापि नहीं। उसका ठीक अर्थ होगा—"जोरू" या "पत्नी"। औरत या स्त्री तो साधारणतः जाति-वाचक संज्ञा के रूप में ही प्रचलित है। पर "भार्या" शब्द पति की अपेक्षा में एक विशिष्ट प्रकार के सम्बन्ध का सूचक है। और उस सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए "भार्या" का ठीक अर्थ होगा—किसी पुरुष के सम्बन्ध के विचार से उसकी विवाहिता स्त्री; और पर्याय होंगे—जोरू, तथा पत्नी। नारी, महिला और स्त्री में भी ऐसे ही अर्थ-भेद हैं। "खेह" का अर्थ धूल और राख एक साथ देना ठीक नहीं है, क्योंकि धूल अलग चीज है और राख अलग चीज "सम्पूर्ण" और "समस्त" में जो अन्तर है, वह इन वाक्यों से स्पष्ट हो जायगा—(क) यह सम्पूर्ण ग्रन्थ महत्त्व की और विचारणीय बातों से भरा हुआ है। और (ख) उनके समस्त ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित ही पड़े हैं। इन वाक्यों में "समस्त" की जगह 'सम्पूर्ण' या 'सम्पूर्ण' की जगह 'समस्त' का प्रयोग ठीक न होगा। "आकृष्ट" और 'आकर्षित' प्रायः समानार्थक समझे जाते हैं। परन्तु तात्त्विक दृष्टि से दोनों के अर्थों में कुछ अन्तर है या होना चाहिए। "आकृष्ट" का ठीक अर्थ होगा—खिंचा हुआ, और "आकर्षित" का अर्थ होगा—खींचा हुआ। इसी प्रकार 'विभक्त' का अर्थ होगा—जिसके विभाग हुए हों, और 'विभाजित' का अर्थ होगा—जिसके विभाग किये गये हों। इसी प्रकार बुरा खराब, अनुचित, ना-मुनासिब सब एक साथ नहीं दिये जाने चाहिएँ। बुरा और खराब एक वर्ग में रहेंगे और अनुचित तथा ना-मुनासिब दूसरे वर्ग में। यों साधारणतः 'निषेध' और "वर्जन" एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं, परन्तु "निषिद्ध" और "वर्जित" के अर्थों पर ध्यान देने से दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। "तट" और "तीर" में भी बहुत अन्तर है। 'तट' ठीक वह स्थान है जहाँ स्थल का विस्तार समाप्त होता है और जल के विस्तार का आरम्भ होता है। पर 'तीर' का अर्थ इससे अधिक व्यापक है उसमें तट से कुछ और ऊपर वाले स्थल का विस्तार भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आ जाता है। हनुमान् जी जब सब वानरों के साथ सीता जी को ढूँढ़ने चले, तब एक गुफा में उन्हें तपस्विनी नारी मिली। उसकी कृपा से—

नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा।
ठाढ़े सकल सिन्धु के तीरा॥

वहाँ पहुँचने पर जब वानरों को चिन्ता हुई, तब थोड़ी सी बातचीत के बाद ही—

अस कहि लवन सिन्धु तट जाई।
बैठे कपि सब दरभ डसाई॥

इस प्रकार जो वानर पहले 'तीर' पर खड़े थे, वे अब आगे बढ़कर 'तट' पर जा पहुँचे। यहाँ 'तीर' और 'तट' का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

तरंग, लहर और वीचि में भी सूक्ष्म अन्तर है। तरंग बहुत ऊँची और बड़ी होती है, जैसी समुद्र की। लहरें उससे छोटी होती हैं जैसी नदियों की। और वीचि इनसे भी छोटी होती हैं जैसी तालाबों की। वायु जब बहुत धीमी होती है, तब वीचि उत्पन्न करती है। साधारण से कुछ तेज होने पर वह लहरें उत्पन्न करती है, और तूफान के समय समुद्र में उत्ताल तरंगें उठती हैं। शंका, संशय और संदेह में, अनुराग, प्रणय, प्रेम और स्नेह में तथा इसी प्रकार के और बहुत से ऐसे शब्दों में जो साधारणतः एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं, बहुत सूक्ष्म अर्थ-भेद होते हैं।* उक्त प्रकार के अन्तरों के विचार से सब पर्याय बहुत समझ-बूझकर और अलग-अलग वर्गों में बाँटकर रखे जाने चाहिए। यदि 'बाई' का अर्थ वात या वायु दिया जाय तो वह अशुद्ध तथा भ्रामक होगा। उसकी ठीक व्याख्या है—रोगी के शरीर में होनेवाला वायु का प्रकोप। 'बदली' का अर्थ केवल बादल या मेघ नहीं है, बल्कि वह ऐसी अवस्था है, जिसमें आकाश बादलों से घिरा या भरा होता है। यदि 'प्रमेय' के सम्बन्ध में कहा जाय—वह जिसे प्रमाणित करना हो; तो वह व्याख्या बहुत भ्रामक होगी, क्योंकि इससे उस व्यक्ति का भी आशय लिया जा सकता है, जिस पर कोई बात प्रमाणित करने का भार हो। इसकी ठीक व्याख्या होगी—(कथन या बात) जो प्रमाणित की जाने को हो। 'विवेक' का अर्थ 'भली बुरी बातों का ज्ञान' नहीं, बल्कि भली बुरी बातों का ठीक ज्ञान करनेवाली आन्तरिक शक्ति होनी चाहिए। 'सचेष्ट' के ये अर्थ ठीक नहीं—१. जिसमें चेष्टा हो। २. जो चेष्टा कर रहा हो। कारण यह है कि उक्त दोनों अर्थों में चेष्टा शब्द दो अलग-अलग क्रियाओं या भावों का सूचक है, और

---

* इस प्रकार के लगभग १४०० शब्दों के अर्थों के अन्तरों का सूक्ष्म विवेचन मैंने "शब्दसाधना" नामक पुस्तक में किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब तक दोनों क्रियाएँ या भाव स्पष्ट न किये जायँ तब तक आशय न खुलेगा। तात्पर्य यह कि जहाँ तक हो सके, अर्थ ठीक, पूरा और स्पष्ट होना चाहिए। वह जिज्ञासुओं के लिए अधूरा, गलत या भ्रामक नहीं होना चाहिए।

कुछ अवस्थाएँ अवश्य ऐसी होती हैं, जिनमें या तो यथेष्ट अवकाश न होने (अर्थात् विस्तार-भ्रम) के कारण अथवा यथेष्ट साधन प्राप्त न होने के कारण पूरे अर्थ या विवरण नहीं दिये जा सकते। बहुत ही कम प्रचलित या कम ज्ञात शब्द भी इस वर्ग में आते हैं। पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों, पेड़-पौधों के हजारों नाम और भेद होते हैं। इनमें से पूरा अथवा साधारण ज्ञान कराने वाला विवरण प्रायः उन्हीं शब्दों का दिया जाता है, जो अधिक प्रसिद्ध होते अथवा प्रायः लोगों के सामने आते रहते हैं। शेष शब्दों के संबंध में एक प्रकार* की चिड़िया (पेड़, मछली) आदि देना ही यथेष्ट होता है। पर यदि 'सरसों' के आगे लिखा हो 'एक तेलहन' या 'सारंग' के आगे लिखा हो 'एक वृत्त' तो पाठकों के हाथ-पल्ले क्या पड़ेगा ? यदि चित्र, विशेष, व्यतिरेक सरीखे शब्दों के अन्तर्गत केवल 'एक अलंकार' कहकर चलता किया जाय, तो काम न चलेगा। कारण यह है कि साधारण समझदार पाठक प्रायः प्रसंग से भी यह समझ लेंगे कि यह साहित्य-क्षेत्र का कोई अलंकार है। और कम समझने वाले लोग या अल्प-वयस्क विद्यार्थी 'एक अलंकार' का मतलब यह भी समझ सकते हैं कि यह किसी तरह के गहने या जेवर का नाम है। जिज्ञासु या विद्यार्थी का काम तो तभी निकलेगा, जब उस अलंकार का कुछ लक्षण या स्वरूप भी बतलाया जायगा। हमारे यहाँ वज्र बधिर, वज्र मूर्ख आदि और उर्दू में सख्त नालायक, सख्त बेवकूफ आदि प्रयोग प्रचलित हैं। इनमें 'वज्र' और 'सख्त' के विशिष्ट अर्थ तो हैं ही, पर वे अर्थ एक विशिष्ट क्षेत्र तक ही परिमित हैं। कोशकार को ऐसे विशिष्ट अर्थ तो बतलाने ही चाहिएँ, उनके क्षेत्र की परिमिति का भी निर्देश करना चाहिए।

प्रामाणिक कोश तथा मानक कोश तैयार करते समय मुझे हिन्दी कोशों में ऐसे अनेक शब्द मिले, जो अर्थ के विचार से अधूरे थे। उदाहरणार्थ–'दावना' शब्द के 'अनाज दाना' या 'ओसाना' और 'दमन करना' अर्थ तो कोशों में मिलते हैं, इसके और

* कोशों में अर्थ या व्याख्या देने के समय प्रायः लिखा जाता है—एक प्रकार का ......। परन्तु इस पद का प्रयोग भी बहुत समझ-बूझकर किया जाना चाहिए, क्योंकि यह सब जगह समान रूप से ठीक नहीं बैठता। चिड़िया, पेड़, मछली आदि में तो प्रकार होते हैं, पर औटा, तापन आदि के सम्बन्ध में 'एक प्रकार का प्रत्यय' लिखना ठीक नहीं है। ऐसे अवसरों पर व्याख्या में 'एक प्रत्यय' ही लिखा जाना चाहिए, क्योंकि प्रत्ययों के प्रकार या भेद नहीं होते।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी दो अर्थ (सं० दावा से व्युत्पन्न) होते हैं—एक तो जलाना और दूसरा चमकाना। पर ये अर्थ अब तक किसी हिंदी कोश में नहीं आये हैं। भारतेन्दु जी ने इसी दूसरे अर्थ में इसका प्रयोग इस चरण में किया है--दामिन दमकि दसो दिसि दावति छटि छुवति छिति छोर। श्री मैथिलीशरण गुप्त के "जय भारत" में एक जगह आया है--

छूत तो किसी को नहीं इस तनु से यहाँ ?

और एक दूसरी जगह आया है—

जिसने दो ही दिन में चुन कर डाला उनको आधा।

उक्त पंक्तियों में 'छूत' और 'चुनना' जिन विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, वे अर्थ अब तक किसी कोश में नहीं आये हैं। हिन्दी का एक बहुत छोटा, पर परम प्रसिद्ध शब्द 'कुछ' है। हिन्दी शब्द-सागर में विशेषण रूप में उसका एक ही अर्थ आया है-- 'थोड़ी संख्या या मात्रा का। जरा। थोड़ा सा। टुक।' उसमें यह त्रुटि तो है ही कि संख्या और मात्रा का एक साथ ही उल्लेख है, जो वस्तुतः अलग-अलग होना चाहिए। पर 'कुछ' का एक दूसरा अर्थ उसमें आया ही नहीं। हम कहते हैं--(क) कुछ लोग इधर हो गये और कुछ उधर। (ख) कुछ चावल यहाँ रहने दो और कुछ वहाँ भेज दो। ऐसे अवसरों पर 'कुछ' का अर्थ जरा, थोड़ा, टुक आदि नहीं, बल्कि अनिश्चित मात्रा या संख्या अथवा अधिक के लगभग होता है। तुलना शब्द सकर्मक रूप में और गाड़ियों के पहियों और धुरी के सिरों पर तेल देने या औगने के अर्थ में तो प्रसिद्ध ही है, और प्रायः सभी कोशों में आया है, पर यह शब्द कवियों ने अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त किया है। उदाहरणार्थ दीनदयाल गिरि ने कहा है--

रंग न तेरो है कछू सुबरन रंग न तूलि।

और जयशंकर प्रसाद ने लिखा है--

मंजुल रसालन की मंजरी के पुंजन में
पाय के प्रसाद तहाँ गूँज गूँज तूले हौं।

पर 'तूलना' के ये अर्थ (तुलना करना और तुलना होना) अब तक किसी कोश में नहीं आये।

भाषा शास्त्र का एक बहुत चलता हुआ सिद्धान्त यह है कि किसी शब्द का प्रचार या व्यापकता जितनी ही अधिक होती है, जन-साधारण को उसके ठीक अर्थ का बोध भी उतना ही कम होता है। उदाहरण के लिए नित्य की बोल-चाल का 'सही' शब्द लीजिए। हम कहते हैं--(क) आप बैठें तो सही। (ख) आप वहाँ गये सही। (ग) अच्छा यही सही। (घ) हम दरिद्र सही आदि। अब जरा स्थिर चित्त होकर विचार कीजिए कि उक्त प्रयोगों में 'सही' का क्या अर्थ या भाव है, और वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ या भाव किसी को समझाने का प्रयत्न कीजिए। ऐसे अर्थ का भाव स्वयं समझ लेना जितना सहज है, दूसरों को समझा सकना उतना सहज नहीं है। हिन्दीवाले तो ऐसे प्रयोगों के आशय से परिचित होने के कारण उनके अर्थ या विवरण की अधिक खोज नहीं करते। परन्तु यदि कोई अन्य भाषा-भाषी बात-चीत में "सही" के उक्त प्रयोग सुने या तुलसी-कृत रामायण के 'प्रभु आशुतोष कृपालु शिव अबला निरखि बोले सही', में के "सही" शब्द का अर्थ जानना चाहे तो वह अर्थ उसे कोश में मिलना चाहिए पर हिन्दी शब्द-सागर के सम्पादन के समय 'सही' के उक्त प्रयोगों का अर्थ और विवरण शायद इसी लिए छूट गया था कि सम्पादकों ने सोचा होगा कि यहाँ 'सही' बिलकुल साधारण रूप में प्रयुक्त हुआ है और वह अपने विशेषण तथा स्त्रीलिंग संज्ञा वाले अर्थों में तो आ ही चुका है, अतः उन्हीं में कहीं इसका भी अन्तर्भाव हो जायगा। उनका ध्यान इस शब्द के उक्त प्रकार के असाधारण प्रयोगों, उनसे सूचित होनेवाले कई तरह के विशिष्ट भावों और उसकी स्वतंत्र व्युत्पत्ति की ओर नहीं गया था और फलतः हिन्दी के सभी कोश 'सही' के ऐसे अर्थों से वंचित रह गये। उक्त शब्द के वैसे ही विलक्षण प्रयोगों ने मुझे आकृष्ट करके उसका पूरा विवेचन करने के लिए प्रेरित किया था। इन सब उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि शब्दों के अर्थों के संबंध में बहुत ही गम्भीर अध्ययन और छान-बीन होने की आवश्यकता है।

आज-कल अनेक प्राचीन काव्यों के ऐसे नये संस्करण निकलते लगे हैं, जिनमें टीका-टिप्पणियाँ भी रहती हैं। प्रायः सुयोग्य विद्वान् ही ऐसे संस्करणों के सम्पादक होते हैं। वे बहुत परिश्रम और छान-बीन करके ग्रन्थों का सम्पादन करते और यथा-साध्य शुद्ध पाठ और ठीक अर्थ देने का प्रयत्न करते हैं। पर कभी न कभी और कहीं न कहीं भूल सबसे हो ही जाती है। यह बात दूसरी है कि आप कम भूलें करें और मैं अधिक भूलें करूँ। पर मनुष्य कभी सर्वज्ञ नहीं हो सकता, और न सदा सब अवसरों पर यही कह सकता है कि जो पाठ, अर्थ या निरुक्ति मैंने बतलाई है, वही बिलकुल ठीक है; या इसके सिवा और कुछ पाठ, अर्थ या निरुक्ति हो ही नहीं सकती। मुझे नये शब्द और नये अर्थ एकत्र करने में ऐसे सुसम्पादित ग्रन्थों से बहुत अधिक सहायता मिलती है, और मैं उनके सुयोग्य सम्पादकों का बहुत ऋणी हूँ। उनके प्रति यथेष्ट आदर-सम्मान का भाव रखते हुए भी मैं कह सकता हूँ कि कुछ स्थानों पर उनके दिये हुए पाठ या किये हुए अर्थ मुझे ठीक नहीं जान पड़ते, और ठीक अर्थ तक पहुँचने के लिए मुझे इधर-उधर भटकना पड़ता है। और जब तक सन्तोषजनक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निराकरण नहीं हो जाता, तब तक मैं ऐसे शब्द और उनके अर्थ ग्रहण नहीं करता, उन्हें विचारणीय वर्ग में ही रखता हूँ[1]।

ऐसा एक शब्द लीजिए। महाकवि सूरदास जी ने एक जगह कहा है—

ग्रीवा-रन्ध्र नैन चातक जल, पिक मुख बाजे बाजन।

और दूसरी जगह कहा है—

स्वाति बिना ऊपर सब मरियत ग्रीव-रन्ध्र मत कीन्हों।

इनमें का ग्रीव-रन्ध्र या ग्रीवा-रन्ध्र शब्द किसी कोश में नहीं आया है। कई संस्कृत कोशों में भी यह शब्द मुझे नहीं मिला। पर एक मित्र कहते हैं, इसका अर्थ 'झिल्ली' नामक प्रसिद्ध बरसाती जन्तु है, जो उक्त प्रसंगों में ठीक बैठता है। हो सकता है कि इसका शुद्ध रूप रन्ध्र-ग्रीव हो। इस प्रकार के शब्दों की ओर भी कोशकारों को ध्यान रखना चाहिए।

एक बार एक प्राचीन काव्य के नये संस्करण में एक जगह एक शब्द (खेद है कि वह शब्द मुझे इस समय याद नहीं आता) का अर्थ मिला—एक प्रकार का बाजा, और दूसरी जगह उसी शब्द का अर्थ मिला—एक प्रकार का हथियार। सन्देह की निवृत्ति के लिए मैंने मूल से मिलान किया तो पता चला कि उसका प्रयोग हथियारों के प्रसंग में ही हुआ है, और दूसरी जगह वह भूल से ही बाजा बतलाया गया है। ऐसे अवसरों पर ध्यान रखने की मुख्य बात यह है कि शब्द ज्यों-ज्यों पुराने होते चलते हैं, त्यों-त्यों उनका प्रयोग भी कम होने लगता है। प्रयोग की इस कमी के कारण लोग उनके अर्थ भूलने लगते या कुछ का कुछ समझने लगते हैं। प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादक कभी-कभी या तो पुराने शब्दों में नये मनमाने अर्थ लगा देते हैं या उनका रूप ही बदल देते हैं। अच्छे कोशकार को यथा-साध्य ऐसे चक्करों से बचने के लिए बहुत सतर्क रहना पड़ता है।

मीराँ के पदों में से शब्द-संग्रह करते समय मुझे एक पद में ये दो चरण मिले—'मोती मानिक परत न पहिरूँ, मैं कबकी नटकी।' और 'गैणो तो म्हारो माला दोवड़ी औ चंदन की कुटकी।' एक सुयोग्य विद्वान् ने कदाचित् अनवधानता के कारण इनमें से पहले चरण के 'नटकी' शब्द का अर्थ किया है—अस्वीकार कर दिया है, अर्थात् इसे नटना क्रिया से सम्बद्ध मान लिया है और दोवड़ी का अर्थ लिखा है—एक प्रकार का गहना। ऐसा सम्भवतः इसीलिए किया गया है कि मीराँ के उक्त पद में पहले गैणों (हिं० गहना या आभूषण का राजस्थानी रूप) शब्द आया है। पर

---

१. मेरे पास ऐसे विचारणीय शब्दों की एक बहुत बड़ी सूची बन गई है जो फिर किसी अवसर पर प्रकाशित की जायगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुझे ये दोनों अर्थ ठीक नहीं जँचे। नटना क्रिया तो ठीक है, पर नटका के अर्थ में कभी नटकना का प्रयोग नहीं होता। राजपूताने में नट जाति के लोगों, विशेषत: बालकों और युवकों को 'नटका' भी कहते हैं, जिसका अर्थ होता है—नट जाति का या नट की सन्तान। 'नटकी' इसी 'नटका' का स्त्री रूप है। मीराँ कहती है कि मैं कोई नट जाति की स्त्री नहीं हूँ जो चमकीले पत्थरों से अपने आपको सजाऊँ। 'दोवड़ी' के संबंध में मैंने सोचा कि जिस मीराँ ने राज-सुख पर लात मारी थी, वह भला कोई गहना क्यों पहनेगी। तिस पर वह स्वयं कह रही है कि माला, दोवड़ी और चंदन की कुटकी ही मेरे गहने हैं। अत: 'दोवड़ी' भी माला और चन्दन की कुटकी की तरह की और कोई चीज होनी चाहिए। मैंने अपने विचारणीय शब्दों की सूची में दोवड़ी शब्द के साथ उक्त चरण लिख लिया। कोई छ: महीने बाद जब 'कबीर साहित्य का अध्ययन' प्रकाशित हुआ और मैं उसमें से शब्द-संग्रह करने लगा, तब उसमें एक जगह मिला—पाँच गज दोवटी माँगी, चून लीयौ सानि। तब तुरन्त मेरा ध्यान मीराँ की दोवड़ी की ओर गया और दोनों पदों को मिलाकर देखने पर मालूम हुआ कि "दोवटी" और "दोवड़ी" एक ही चीज हैं। ये शब्द सं० द्विपट्ट से निकले हैं, जिसका अर्थ है—साधारण मोटा कपड़ा। और तब यह शब्द मैंने अपनी प्रति में उक्त उदाहरणों सहित संकलित किया है।

'सूर-सागर' में एक जगह आया है—जनि बल बाँधि बढ़ावहु छीति। इसमें पहले तो बल बाँधना मुहावरा है, जिसका आज-कल के शब्दों में अर्थ है—जोर लगाना या प्रयत्न करना। यह मुहावरा ही अब तक कोश में नहीं आया है। दूसरा शब्द है 'छीति' जिसको हिन्दी शब्द-सागर में सं० क्षति से व्युत्पन्न माना गया है और जिसका अर्थ किया गया है—हानि, बुराई आदि। सूर के शब्दों का नये सिरे से संग्रह करते समय जब मेरा ध्यान इस शब्द पर गया, तब इसकी व्युत्पत्ति और अर्थ दोनों मुझे ठीक नहीं जान पड़े। वास्तव में बात यह है कि हिं० छूना (स्पर्श करना) का उच्चारण व्रज भाषा में छीना होता है। जिस प्रकार खड़ी बोली में छूना से भाव-वाचक संज्ञा छूत बनती है, उसी प्रकार ब्रजभाषा में छीना से छीति बनती है। इस छीति का पहला अर्थ वही छूत होता है, और दूसरा अर्थ सम्पर्क या सम्बन्ध होता है। सूरदास का आशय यही है कि प्रयत्नपूर्वक उनसे बहुत सम्बन्ध या हेल-मेल मत बढ़ाओ। और इस शब्द की निरुक्ति तथा अर्थ की इस प्रकार संगति बैठ जाने पर मैंने अपनी प्रति में इसी प्रकार संशोधन किया है।

कबीरदास के एक पद में आया है—पाहू घर आये, मुकलाऊ आये। सन्त समाज में यह चरण विशेष प्रसिद्ध है, और गुरु ग्रन्थ साहब में भी यह इसी रूप में आया है। एक आदरणीय विद्वान् ने अपने ग्रन्थ में 'मुकलाऊ' का अर्थ किया है—मुक्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करना, विदा कराना, और इसीलिए उक्त पद का अर्थ दिया है--विदा कराने के लिए पाहुने आये हुए हैं। कबीर ने एक उलटवाँसी में भी इस "मुकलाना" शब्द का प्रयोग किया है--सुति मुकलाई अपनी माउ। उक्त ग्रन्थ में इसका अर्थ किया गया है--पुत्र (अज्ञान) अपनी माता (माया) को बन्धन से मुक्त करा लाया है। परन्तु पंजाबी होने के नाते मैं जानता हूँ कि "मुकलावा" पंजाबी में द्विरागमन को कहते हैं। दामाद जब विवाह के बाद अपनी बहू को विदा कराके अपने घर लाने के लिए ससुराल जाता है, तब कहा जाता है कि वह "मुकलावा" लेने के लिए गया है, और जब बहू घर आ जाती है, तब कहा जाता है--मुकलावला आ गया। इस दृष्टि से पहले उद्धरण का अर्थ होगा--बहू को विदा कराने के लिए दामाद[1] घर आया है और दूसरे उद्धरण का अर्थ होगा--पुत्र (अज्ञान) ने अपनी माता (माया) के साथ विवाह करके उसका गौना या द्विरागमन कराया है।

यह तो हुई ऐसे शब्दों की बात जो स्थानिक होते और अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं। इन्हीं से मिलते-जुलते कुछ ऐसे शब्द और पद भी होते हैं जो विशिष्ट भौगोलिक स्थितियों में अथवा सामाजिक रीति-रिवाजों से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे-- 'केसरिया बाना' और 'जौहर' का संबंध राजस्थान से है, और 'बीड़ा उठाना' भारत की सामन्त प्रणाली से सम्बद्ध है। 'झाँझी', 'टेसू' आदि कुछ विशिष्ट क्षेत्रों के सामाजिक त्योहार हैं, और साँझी कुछ विशिष्ट स्थानों के देव-मन्दिरों में प्रचलित सज्जा-कला है। इसी वर्ग में 'हाथों की चूँड़ियाँ बनी रहना' (साथ में राखिए नाथ उन्हें हम हाथ मैं चाहति चारि चुरी ये। --देव) माथे का सिंदूर पोंछा जाना, तृण गहना या दाँतों में तिनका पकड़ना, तिनके की ओट पकड़ना, तिनके की ओट करना या लेना (तृन धरि ओट कहति बैदेही।--तुलसी) दिशाएँ रुकना, (किसी पर से) पानी काटकर पीना, सिर सूँघना आदि मुहावरे भी आते हैं। इस प्रकार के शब्दों और मुहावरों के अर्थ देने या व्याख्या करने के समय कुछ विशिष्ट प्रकार की जानकारी के सिवा बहुत कुछ सतर्कता की भी आवश्यकता होती है। बहुत दिन पहले मैंने उर्दू के एक बहुत बड़े और मान्य शब्द-कोश में हिन्दी के 'कनागत' शब्द की इसी जानकारी के अभाव के कारण, बहुत ही विलक्षण दुर्दशा देखी। उसके आदरणीय सम्पादक महोदय हिन्दुओं की रीति-रस्मों और 'कनागत' की व्युत्पत्ति (कन्या-गत या कन्या राशि में पहुँचा हुआ सूर्य) से बिलकुल अपरिचित थे, इसलिए इसका मनमाना अर्थ लगाते हुए वे लिख गये थे कि हिन्दू लोग इन दिनों में कन्याओं या लड़कियों को बस्ती के बाहर ले जाकर उनकी गत बनाते (दुर्दशा करते) हैं।

---

१. उक्त उद्धरण में पाहू उसी प्रकार दामाद के लिए आया है, जिस प्रकार आज भी पाहुना पश्चिम में और मेहमान पूरब में दामाद का वाचक माना जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक और क्षेत्र है, जिसमें अर्थों के संबंध में प्रायः गड़बड़ी होती है। बहुत-सी पुरानी चीजें या बातें ऐसी होती हैं, जिनका प्रचलन उठ जाने के कारण, लोगों का उनसे बहुत कम परिचय रह जाता है अथवा उनके संबंध में जनता में भ्रम फैल जाता है। उदाहरण के लिए आज-कल साधारणतः 'नावक' का अर्थ 'तीर' ही समझा जाता है, पर वास्तव में नावक साधारण तीर नहीं है, बल्कि वह एक विशेष प्रकार का छोटा तीर या उसका फल होता है, जो लोहे की नाली में रखकर बारूद की सहायता से चलाया जाता था। ऐसी अनेक छोटी-मोटी बातें होती हैं, जिनके संबंध में कभी कोई विद्वान् विशेष छान-बीन करके उसके वास्तविक तथ्य का पता लगाता है, और तब अपने नये अनुसन्धान का फल किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित कराता है। कोशकार की दृष्टि इस क्षेत्र पर भी रहनी चाहिए। नेत्र-कष्ट के कारण मैं पढ़ता बहुत कम हूँ, फिर भी फुटकर पत्र-पत्रिकाओं में मुझे कभी-कभी कुछ नये शब्द या अर्थ मिल ही जाते हैं। बहुत दिन पहले डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल दतिया का किला देखने गये थे। वहाँ उन्हें पुराने अस्त्र-शस्त्रों के संबंध में बहुत-सी नई बातें मालूम हुई थीं, और मध्यकालीन युग के अनेक भारतीय आयुध देखने को मिले थे। उन्होंने इस सम्बन्ध का एक विस्तृत लेख अगस्त १९५१ की 'कल्पना' में प्रकाशित कराया था। उस लेख में मुझे पचासों नये शब्द और नये विवरण मिले। उनका संग्रह करते समय एक नई और जानने योग्य बात यह मिली कि 'झिलम और टोप दोनों एक ही चीज नहीं हैं', बल्कि दो अलग-अलग चीजें हैं। दोनों में ऐसा अन्तर है, जिसे अब लोग प्रायः भूल गये हैं। टोप तो लोहे का उपकरण है ही, जो युद्ध के समय सिर पर पहना जाता था। पर झिलम उसमें लगी हुई सिकड़ियों की उस झालर को कहते थे, जो पीछे गरदन की ओर लटकती थी। इसी अन्तर ने मेरा ध्यान इस बात की ओर भी आकृष्ट किया था कि इस शब्द का झिलमिली के साथ नैरुक्तिक सम्बन्ध होना चाहिए। इसी प्रकार का कुछ विशिष्ट अन्तर जिरह और बख्तर में भी है, पर वह अन्तर भी आज-कल लोग भूल गये हैं और दोनों एक चीज समझे जाते हैं। मानक हिन्दी-कोश के लिए उक्त चारों शब्दों की व्याख्या इसी आधार पर ठीक की गई है, और दोनों शब्द-युग्मों के अन्तर स्पष्ट किये गये हैं। पुराने शब्दों के अतिरिक्त आज-कल हमारे साहित्य में ऐसे बहुत-से नये शब्द भी चल रहे हैं, जिनका ठीक-ठीक आशय कुछ विशिष्ट विद्वानों की आलोचनात्मक या साहित्यिक कृतियों में तो कहीं-कहीं मिलता है, पर साधारण पाठकों को जिनके ठीक और स्पष्ट अर्थ का ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार के शब्द तो खूब मँज जाने के कारण लोगों की जबान पर चढ़ जाते या कलम से उतर आते हैं, पर इनके ठीक आशयों से पाठक तो क्या स्वयं लेखक भी कभी-कभी पूरे परिचित नहीं होते। अभी हाल तक छायावाद और रहस्यवाद को बहुत-से लोग समानार्थक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

R.P.S
097
ARY-S
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
Gurukula Kangri University 185478

समझते थे, और कदाचित् अब तक कुछ लोग उनमें विशेष अन्तर नहीं मानते। पर दोनों में अन्तर है—बहुत बड़ा अन्तर है। साधारण पाठकों के लिए यह अन्तर स्पष्ट कर दिखलाना कोशकार का ही काम है। अभिव्यंजनावाद, आदर्शवाद, प्रतीकवाद, यथार्थवाद, साधारणीकरण आदि सैकड़ों ऐसे नये शब्द साहित्य में चल पड़े हैं जिन्हें ठीक और पूरी व्याख्या के साथ शब्द-कोशों में स्थान मिलना चाहिए। चारों ओर दृष्टि रखने से कोशकार को ऐसी बहुत-सी नई बातें मिलती रहती हैं, जो उसके कोश में औरों की तुलना में बहुत कुछ नवीनता और विशेषता ला सकती हैं।

अब एक और शब्द-वर्ग लीजिए, जो है तो परिमित, फिर भी प्राचीन हिन्दी-साहित्य में वह पाया ही जाता है। वह है श्लेषों, उलटवाँसियों, कूटों आदि का वर्ग। श्लिष्ट शब्दों और पदों के अर्थ तो फिर भी थोड़े बहुत-प्रयत्न से, या शब्द-कोशों की सहायता से, समझ में आ जाते हैं। जैसे—कहीं मित्र शब्द आया हो तो पाठक समझ सकते हैं कि अमुक प्रसंग में यह सूर्य के लिए आया है, और अमुक प्रसंग में दोस्त के लिए है, कहीं 'हंस' मिले तो वे समझ, सकते हैं कि यहाँ यह पक्षी के लिए आया है और यहाँ सूर्य के लिए। 'द्विज-पाँति' से वे समझ सकते हैं कि यहाँ ब्राह्मणों की पंक्ति वाला आशय अभीष्ट है, या दाँतों की पंक्ति वाला या दोनों। इसका एक तीसरा अर्थ पक्षियों की पंक्ति भी हो सकता है। और इस क्षेत्र में शब्द-कोशों से जिज्ञासुओं को सहायता मिल सकती है, पर इससे आगे नहीं।

अब उलटवाँसियाँ और कूट लीजिए। हिन्दी में कबीर की उलटवाँसियाँ और सूर के कूट बहुत प्रसिद्ध हैं। पर उनका आशय समझना-समझाना सबका काम नहीं है, क्योंकि उनका सम्बन्ध कुछ विशिष्ट घटनाओं, तथ्यों, परिस्थितियों आदि से होता है। 'पहले पूत पीछे भई माई' सरीखी उलटवांसियों या "गिरजापति-पतिनी-पति-जा-सुत" सरीखे कूटों का वास्तविक अभिप्राय कोशकार किसी प्रकार बतला ही नहीं सकता। उसका काम अलग अलग शब्दों के अर्थ बतलाना और व्याख्या करना ही है, पौराणिक कथाओं, दार्शनिक तत्त्वों आदि का पारस्परिक संबंध और तारतम्य स्पष्ट करके उनका गूढ़ अभिप्राय या आशय बतलाना नहीं। कभी-कभी कुछ शब्दों के आदि, मध्य या अन्त के अक्षरों के योग से बननेवाले शब्दों का भी कवि लोग संकेत करते हैं। साधारण अवस्था में पाठक स्वयं ऐसे शब्द ढूँढ निकालते हैं। पर जहाँ शब्दों के पर्यायों के आदि-अन्त के अक्षर जोड़कर शब्द ढूँढ़ने पड़ते हैं, वहाँ न पाठकों की बुद्धि काम करती है और न कोशों से सहायता मिल सकती है। सूर-कृत "भूसुत (कुंज) मेघकाल (बरखा) निसि (जामिनि) इनके आदि बरन चित आवै का अर्थ—कुब्जा का ध्यान आता है।" भला शब्द-कोश की सहायता से कैसे जाना जा सकता है? ऐसे प्रसंगों में आनेवाले पदों और वाक्यों का ठीक और पूरा विवेचन ग्रन्थ विशेष के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकों का ही काम है। इस प्रकार के प्रयोगों की गणना तो पहेलियों के वर्ग में होनी चाहिए, और पहेलियाँ बूझने में शब्द-कोशों से कोई सहायता नहीं मिल सकती।

इसी से मिलती-जुलती एक और ऐसी अवस्था है जिसमें कोशकार के हाथ-पैर बँध जाते हैं—वह कुछ नहीं कर सकता। प्रायः लोग साधारण अवस्थाओं में कहीं 'कमल' के लिए 'विधि-तात' कहीं 'पूर्व दिशा' के लिए 'वासव' दिया; कहीं 'कल्प-वृक्ष' के लिए 'काम-भूरुह', और कहीं 'चन्द्रमा' के लिए 'गिरिजा-पति-भूषण' सरीखे पदों का प्रयोग कर जाते हैं। इसी वर्ग का 'लक्ष्मी-सहज' शब्द लीजिए। इसका शब्दार्थ है—वह जो लक्ष्मी के साथ उत्पन्न हुआ हो। पर समुद्र-मंथन के समय लक्ष्मी के साथ तेरह अन्य चीजें भी निकली थीं, जैसे–अमृत, विष, चन्द्रमा आदि। यहाँ तक कि उच्चैश्रवा नाम का घोड़ा भी उसमें से निकला था। अब कोशकार 'लक्ष्मी-सहज' का अर्थ दे तो क्या दे ? वह तो अधिक से अधिक यही कर सकता है कि समुद्र-मंथन के अन्तर्गत कुछ ब्योरा दे दे। ऐसे पदों का आशय जानने के लिए जिज्ञासुओं को दूसरे साधनों से सहायता लेनी पड़ेगी।

फिर कुछ ऐसे भिन्नार्थक शब्द भी होते हैं, जो किसी विशिष्ट क्षेत्र में एक दूसरे के पर्याय मान लिये जाते हैं। उदाहरण के लिए चन्द्रमा का जो कलंक है, उसे कुछ लोग शश या खरगोश कहते हैं और कुछ लोग हिरन। कामदेव को मकर-ध्वज भी कहते हैं और मीन-केतु भी। कारण यही है कि उक्त प्रसंगों में कवि-समय के अनुसार शश और हिरन तथा मकर और मीन एकार्थवाची मान लिये गये हैं। कोशकार न तो शश का अर्थ हिरन या मकर का अर्थ मीन ही बतला सकता है, न प्रतिक्रमात् ही। ऐसी बातें साहित्य-शास्त्र के अध्ययन से ही जानी जा सकती हैं।

अब और एक प्रकार के शब्द लीजिए, जो कुछ विशिष्ट क्षेत्रों या प्रसंगों में ही अपना कुछ विशिष्ट अर्थ रखते हैं। रहस्य-सम्प्रदाय में ऐसे बहुत-से शब्द प्रचलित हैं, जो कुछ निजी और निराले अर्थ रखते हैं। जैसे–उक्त सम्प्रदाय के ग्रन्थों में अम्बर से अन्तःकरण 'का, गुफा या सरोवर, से हृदय का, और हंस से जीव, प्राण आत्मा आदि का अर्थ लिया जाता है। उक्त सम्प्रदाय का साहित्य हिन्दी में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, और अब उसके अध्ययन की ओर लोगों की रुचि भी बढ़ने लगी है। पर अभी तक इस प्रकार के विशिष्ट अर्थों की ओर हिन्दी कोशकारों का ध्यान नहीं गया था। मेरी समझ में इस प्रकार के कुछ बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित शब्द-अर्थ कोशों में सहज में लिये जा सकते हैं, और यही समझ कर मैंने अपनी प्रति में इनका संकलन किया है।

कहीं-कहीं कवि लोग कुछ शब्दों के प्रयोग केवल सांकेतिक रूप में कर जाते हैं और ऐसे शब्दों के द्वारा वे कोई ऐसा भाव प्रकट करना चाहते हैं, जो न तो सहसा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी की समझ में आ सकता है और न जिसका किसी दूसरे प्रसंग में वह अर्थ या आशय लग सकता है। उदाहरण के लिए तुलसी-सतसई में गोस्वामीजी ने कहा है—भगन भगति करु मरम तजि, तगन सगन विधि होय। कहा जाता है कि इसमें का 'भगन' यहाँ माधव के लिए, 'तगन' सन्तोष के लिए और 'सगन' शुचिता के लिए आया है। ये सब शब्द (भगण, तगण, सगण) छन्द-शास्त्र के गणों के नाम हैं, और हो सकता है कि कुछ विद्वान् दिमाग लड़ाकर इन गणों को कुछ और तत्त्वों या बातों का भी सूचक सिद्ध कर सकें। पर गोस्वामी जी ने जिस अभिप्राय से इन शब्दों का प्रयोग किया है, वह अभिप्राय तुलसी-सतसई की अच्छी टीका से ही जाना जा सकता है, किसी शब्द-कोश की सहायता से नहीं, क्योंकि गणों के ये नाम बहुत-से शब्दों के सूचक हो सकते हैं। हाँ, लोग अपनी समझ से प्रसंग के अनुसार इनका आशय समझ सकते हैं।

इस वर्ग में ऐसे साधारण शब्द भी आते हैं, जिनका हमारे यहाँ के भक्त कवियों ने विशेष रूप से प्रयोग किया है, और जिनका सम्बन्ध किसी विशिष्ट पौराणिक कथानक या घटना से होता है। जैसे—व्याध, गीध, गनिका आदि। ये शब्द साधारणतः जातिवाचक संज्ञा हैं। कोशों में इनके साधारण अर्थ तो मिल जायँगे, पर जो विशिष्ट व्याध, गीध और गणिका उक्त पद में अभिप्रेत हैं, उनका विवरण भी तो जिज्ञासुओं को मिलना चाहिए। अब तक किसी कोश में ऐसे शब्दों का इस दृष्टि से विवेचन नहीं हुआ है। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो कोशों में ऐसे बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध शब्दों के अन्तर्गत इससे सम्बन्ध रखनेवाले पौराणिक कथानकों, घटनाओं या व्यक्तियों का भी कुछ उल्लेख होना चाहिए।

कभी-कभी कवि लोग यौगिक पदों के अलग-अलग अंगों या शब्दों के पर्यायों के योग से भी नये शब्द बना लेते हैं। जैसे—धनुष-यज्ञ के लिए चाप-मख, इन्द्र-धनुष के लिए शक्र-चाप, वाग्वीर या शब्द-सूर के लिए गिरा-भट या सुग्रीव के लिए सुकंठ आदि। इस प्रकार के शब्द जब संस्कृत के क्षेत्र से आगे बढ़कर हिन्दी के क्षेत्र में आते हैं, तब वे कोशकारों के लिए एक समस्या-सी खड़ी कर देते हैं। जैसे—कामधेनु के लिए सुर-गैया या यदुराज के लिए जदुरैया सरीखे प्रयोग। इस प्रकार के बहुत से नये शब्द भी बनाये जा सकते हैं, और उन सबकी कल्पना करके शब्द कोशों में उन सबको स्थान देना न तो संगत ही है, न सम्भव ही। फिर भी इनमें जो अधिक प्रसिद्ध हों या जिनका प्राचीन काव्यों में विशेष प्रयोग हुआ हो, उन्हें शब्द-कोश में ले लेना ही उचित होगा।

अर्थ की दृष्टि से कोशकार को एक और महत्त्वपूर्ण बात का ध्यान रखना पड़ता है। जीवित और प्रचलित भाषाएँ सदा बढ़ती रहती हैं। उनमें नये नये शब्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और नये-नये अर्थ बढ़ते रहते हैं, और जब तक कोश में ऐसे नये शब्द और नये अर्थ न लिये जायँ, तब तक वह अद्यावधिक नहीं हो सकता। आज-कल सारे देश में 'मत' शब्द अंगरेजी के 'वोट' के लिए प्रचलित है। परन्तु जब इन पंक्तियों का लेखक प्रामाणिक हिन्दी कोश तैयार कर रहा था तब उसने देखा कि हिन्दी के किसी कोश में 'मत' का यह नया अर्थ नहीं आया। कारण कदाचित् यही है कि जिस समय हिन्दी शब्द-सागर बना था, उस समय इस नये अर्थ में 'मत' शब्द बहुत अधिक प्रचलित नहीं हुआ था। यदि शब्द-सागर में इस शब्द का उक्त अर्थ आया होता, तो अन्य कोशों में भी अवश्य आ जाता। 'मत' का यह नया अर्थ पहले-पहल प्रामाणिक हिन्दी कोश में बढ़ाया गया था। 'चरम' अब तक विशेषण ही माना जाता है, पर अब वह उपन्यासों और नाटकों के सम्बन्ध में उस विशिष्ट स्थिति की सूचक संज्ञा के रूप में भी व्यवहृत होने लगा है, जिसमें घटना-क्रम या कथा-वस्तु आगे बढ़ती हुई अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर उतार या समाप्ति की ओर चलती है और जिसे अंगरेजी में क्लाइमेक्स कहते हैं। आज-कल 'आकाश-वाणी' शब्द 'रेडियो' के लिए बहुत प्रयुक्त होता है। समारम्भ का साधारण अर्थ है--अच्छा आरम्भ। पर अब वह हिन्दी में उत्सव या समारोह के अर्थ में चल पड़ा है। पहले दैनिकी का अर्थ था--दैनिक वेतन या भाड़ा, पर अब वह अं० डायरी के अर्थ में चल रहा है। 'निर्भर' का मूल अर्थ है--अच्छी तरह भरा हुआ या पूरा, पर आज-कल वह अवलम्बित या आश्रित के अर्थ में चलता है। अंगरेजी की देखा-देखी 'दुर्बलता' में एक नया अर्थ लग गया है। हम कहते हैं--उनमें एक दुर्बलता यह भी है कि वे सुनी-सुनाई बातों पर जल्दी विश्वास कर लेते हैं। स्थूल आकलन (या विचार) सूक्ष्म बुद्धि (या अन्तर) सरीखे प्रयोगों में स्थूल और सूक्ष्म के जो अर्थ हैं, वे अब तक किसी कोश में ठीक तरह से नहीं आये हैं। ढूंढ़ने पर इस प्रकार के सैकड़ों-हजारों नये अर्थ मिल सकते हैं। जब तक ऐसे नये अर्थ कोश में न आवें, तब तक वह आधुनिक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी और सर्वांगपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

यहाँ प्रसंगवश एक और बात बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। हिन्दी में समाचार शब्द आजकल खबर के अर्थ में बहुत प्रयुक्त हो रहा है, बल्कि यों कहना चाहिए कि अब इस शब्द का 'खबर' के सिवा और कोई अर्थ रह ही नहीं गया। कम से कम गोस्वामी तुलसीदास जी के समय से तो यह इसी अर्थ में प्रचलित है। यथा-समाचार पुरवासिन पाये। संस्कृत में इसके 'अच्छा आचार' आदि कुछ अर्थ थे, पर वे अब प्रायः छट से गये हैं। पहले इसमें पुराने अर्थों के साथ यह नया अर्थ लगा--किसी के आचरण का ज्ञान, परिचय या सूचना। और तब यही अर्थ विकसित होकर साधारण 'खबर' के रूप में परिणत हो गया। यह ठीक है कि संस्कृत के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत पुराने कोशों में इस शब्द का यह अर्थ नहीं मिलता। परन्तु केवल इसी आधार पर एक प्रतिष्ठित विद्वान् इसे संस्कृत का शब्द मानने के लिए तैयार नहीं हैं। वे इसके लिए क्लिष्ट-कल्पना करते हुए कहते हैं कि 'खबर' के अर्थ में 'समाचार' शब्द सम्भवतः सं० संचार[1] से निकला होगा। पर यह द्रविड़ प्राणायाम के सिवा कुछ नहीं है। सीधी सी बात यह जान पड़ती है कि समाचार का विकसित अर्थ रहा होगा——अच्छी तरह रहना। और इसी से आगे चलकर किसी के कुशलपूर्वक होने की जो सूचना होती होगी, उसे भी 'समाचार' कहने लगे होंगे, और इस प्रकार यह शब्द 'खबर' के अर्थ में प्रचलित हो गया होगा। फिर यह मत भी ठीक नहीं हैं कि संस्कृत शब्द का जो अर्थ पुराने संस्कृत कोशों में न मिले, उस अर्थ में वह संस्कृत का शब्द ही न माना जाय। इस मत के अनुसार तो अपने नये अर्थों में प्रचलित सैकड़ों-हजारों शब्द संस्कृत के क्षेत्र से अलग हो जायँगे।

आजकल भारत भर में 'चल-चित्र' शब्द फिल्म के अर्थ में बहुत अधिक प्रचलित है। 'चल' और 'चित्र' दोनों संस्कृत के शब्द हैं, पर दोनों का यह यौगिक रूप संस्कृत में प्रचलित नहीं था, यह रूप तो अब गड़ा गया है। संस्कृत कोशों में 'चल-चित्र' शब्द ही नहीं मिलेगा, अर्थ का तो कहना ही क्या है। यही बात 'प्रवर समिति' 'राज्यपरिषद्' 'लोक-सभा', 'स्थानिक स्वराज्य', 'स्थायी समिति' सरीखे सैकड़ों-हजारों शब्दों के सम्बन्ध में भी है, जो इधर हाल में नये बने हैं और बिलकुल नये अर्थों में प्रचलित हुए हैं। फिर भी निरुक्ति की दृष्टि से ये शब्द संस्कृत के ही माने जायँगे, किसी अन्य भाषा के नहीं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार उपसर्ग केवल बीस माने गये हैं। पर उपसर्ग हिन्दी में भी होते हैं और अरबी, फारसी, और अंगरेजी आदि अन्य भाषाओं में भी। अरबी में अल्, बिल् आदि उपसर्ग होते हैं। फारसी में कम, बद आदि शब्द कुछ अवस्थाओं में शब्दों के पहले उपसर्ग के रूप में लगते हैं, जैसे——कम्बख्त, बदबू आदि। इसी प्रकार अंगरेजी के अन्, प्री, मिस, सब् आदि अनेक उपसर्ग होते हैं। यदि हम उपसर्ग शब्द का प्रयोग किसी ऐसे अव्यय या शब्द के सम्बन्ध में करें जो हिन्दी अथवा किसी अन्य भाषा में उपसर्ग की तरह लगता हो तो उसके विषय में यह आपत्ति ठीक नहीं कि इसे उपसर्ग नहीं कहना चाहिए, क्योंकि यह संस्कृत के उपसर्गों की सूची में नहीं आया है। ऐसे अवसरों पर हमें अर्थों के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि व्यापक और धारणा उदार रखनी चाहिए। हमें इस सर्वमान्य सिद्धान्त के आगे सिर झुकाना चाहिए कि शब्दों के अर्थों का बराबर

---

१. यों उत्तर प्रदेश में रहनेवाले राजस्थानी भाई भले ही चिट्ठी-पत्री में लिखा करें आगे भाई जी समाचार नग एक बंचना। यहाँ भी वह समाचार का ही विकृत रूप है, सभाचार का नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विकास होता रहता है, उनमें नये अर्थ लगते रहते हैं। संस्कृत के पुराने शब्द कुछ विशिष्ट अर्थों के क्षेत्र में बाँधकर नहीं रखे जा सकते; उनका अर्थ-विकास होता ही रहेगा।

भाषा-विज्ञान में अर्थापदेश का तत्त्व आरम्भ से ही मान्य है। पर हमारे यहाँ यह तत्त्व कुछ अवस्थाओं में असाधारण रूप से भी काम करता हुआ दिखाई देता है। उदाहरण के लिए अर्जुन शब्द लीजिए। यह पाँडवों में के एक भाई का नाम तो है ही जो प्रसिद्ध धनुर्धर थे। इनके अतिरिक्त यह एक प्रसिद्ध वृक्ष का भी नाम है। पहले तो एक विशिष्ट क्षेत्र में पांडव अर्जुन के अनेक नाम बने और दूसरे क्षेत्र में वृक्ष अर्जुन के। पर आगे चलकर दोनों के अलग अलग नाम भी एक दूसरे के पर्याय माने जाने लगे। हमारे यहाँ कवियों ने अनेक स्थलों पर ऐसा ही किया है। हिन्दी का 'टेक' शब्द लीजिए। इसके अनेक अर्थों में दो अर्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। यथा--(क) दृढ़तापूर्वक की हुई ऐसी प्रतिज्ञा जिससे मनुष्य कभी विचलित न हो, और (ख) गीत का पहला चरण जो हर चरण के बाद दोहराया जाता है और जिसे संगीत के पारिभाषिक क्षेत्र में आस्थाई (स्थायी) कहते हैं। इस अर्थ में इसका एक पुराना पर्याय गीत-भार भी है। परन्तु कवि प्रसाद ने एक जगह इस गीत-भार पद का निम्न पंक्तियों में ऊपर बतलाए हुए पहले अर्थ में ही प्रयोग किया है।

देखता हूँ मरना ही भारत की नारियों का एक गीत भार है।

यहाँ गीत-भार टेक के पहले अर्थ में हुआ है जो ठीक नहीं जान पड़ता।

यहाँ तक तो हुआ शब्दों के अर्थों का विवेचन, अब एक दूसरा अंग या पक्ष लीजिए। शब्द-कोशों में अर्थ दो रूपों में दिये जाते हैं--पर्याय रूप में और व्याख्या रूप में। अधिकतर अवसरों पर प्रसिद्ध और विशेष प्रचलित पर्याय दे देने से ही काम चल जाता है, जैसे--अनंग, कंदर्प, पंचशर, मदन, मनमथ स्मर आदि के आगे कामदेव लिख दिया जाय और कामदेव में विस्तृत विवरण या व्याख्या दे दी जाय तो काम चल जायगा। पर कुछ अवसरों पर तत्त्वों, पदार्थों, आदि की कुछ परिभाषा देने या व्याख्या करने की भी आवश्यकता होती है। यह परिभाषा कठिन या दुरूह शब्द को सुगम और सुबोध बनाने के लिए होती है। साधारण नियम यही है कि शब्दों की व्याख्या पहले की जाती है और तब उसके पर्याय दिये जाते हैं। शब्दों की परिभाषा या व्याख्या का काम कभी कभी इसलिए बहुत कठिन हो जाता है कि हम शब्द का आशय या भाव तो ठीक तरह से समझ लेते हैं, पर शब्दों में वह आशय या भाव प्रकट करने का प्रकार या रूप निश्चित नहीं कर पाते। अपनी अनुभूति को अभिव्यंजना का रूप देने में हम पूरी तरह से समर्थ नहीं होते। शब्द की परिभाषा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या व्याख्या करते समय उसके अनेक तत्त्वों या सिद्धांतों का स्वरूप बतला देना भी आवश्यक है। वे तत्त्व या सिद्धान्त इस प्रकार हैं :—

१—प्रत्येक परिभाषा या व्याख्या सदा एक वाक्य में पूरी होनी चाहिए, और जहाँ तक हो सके वह सब प्रकार से ठीक और पूरी होनी चाहिए। कोई शब्द जिस भाव या विचार का सूचक हो, उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी अंगों या रूपों पर वह परिभाषा बिलकुल ठीक घटनी चाहिए; अर्थात् उसमें अव्याप्ति दोष नहीं होना चाहिए।

२—किसी शब्द के जिस अर्थ की परिभाषा की जाय मुख्यतः उसी पर दृष्टि रहनी चाहिए। जहाँ तक हो सके, परिभाषा संक्षेप में होनी चाहिए, और उसमें इधर उधर की फालतू बातें नहीं आनी चाहिएँ। अर्थात् वह अति-व्याप्ति दोष से भी रहित होनी चाहिए।

३—परिभाषा सदा सरल और स्पष्ट होनी चाहिए। उसका रूप ऐसा जटिल या दुरूह नहीं होना चाहिए कि स्वयं उस परिभाषा की भी परिभाषा अपेक्षित हो, और न उसमें ऐसे कठिन पारिभाषिक शब्द आने चाहिएँ जिन्हें समझने के लिए जिज्ञासुओं को कोशों आदि की सहायता लेनी पड़े। हाँ, कुछ विशिष्ट वैज्ञानिक शब्द कभी-कभी इसके अपवाद भी हो सकते हैं।

४—आरम्भिक परिभाषा या व्याख्या में कहीं वह शब्द या उसका कोई पर्याय नहीं आना चाहिए, जिसकी परिभाषा या व्याख्या की जा रही हो।

परिभाषा के सम्बन्ध में एक बहुत ही विलक्षण बात यह है कि बहुत ही थोड़ी ऐसी चीजें या शब्द होते हैं जिनकी ठीक-ठीक परिभाषा हो सकती है। जो शब्द जितना ही साधारण और सीधा-सादा होता है, उसकी परिभाषा करना भी उतना ही कठिन होता है। कारण यह है कि साधारण वस्तुओं या शब्दों की व्याख्या या परिभाषा करने के लिए अपेक्षया अधिक सरल और साधारण शब्द ढूँढ़ निकालना बहुत ही कठिन होता है। इसलिए अधिकतर हिन्दी कोशों में लोग या तो केवल पर्याय देकर काम चलाते हैं या ऐसी परिभाषाएँ या व्याख्याएँ भर देते हैं जिनसे कुछ भी फल-सिद्धि नहीं हो सकती। इधर मानक हिन्दी कोश तैयार करने के समय जब मुझे हिन्दी और संस्कृत के प्रायः सभी शब्दों पर फिर से नई दृष्टि से विचार करना पड़ा, तब मैंने देखा कि ठेठ हिंदी के बहुत ही छोटे, परम प्रचलित और साधारण शब्द भी अर्थ तथा व्याख्या की दृष्टि से अब तक निरे अधूरे पड़े हैं, और उनके सम्बन्ध में अधिक विचारपूर्वक नया काम करने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, हिन्दी शब्द-सागर के अच्छा, अभी, आन, इतना, इधर, उठना, उलटा, ऊँचा, ऊपर, और, कच्चा, कटना, कड़ा, कल आदि शब्द देखे जा सकते हैं। शब्द-सागर में 'अच्छा' के सब अर्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो भागों में बाँटकर रख दिये गये हैं, और उन दोनों भागों में पर्याय मात्र भरे पड़े हैं। पहले अर्थ-भाग में—उत्तम, भला, बढ़िया, उमदा, खरा और चोखा दिया है, और दूसरे अर्थ-भाग में स्वस्थ, चंगा, तन्दुरुस्त, नीरोग और आरोग्य। दूसरे अर्थ भाग के पर्याय तो बहुत कुछ समानार्थक माने भी जा सकते हैं, पर पहले अर्थ-भाग में दिये हुए पर्यायों का पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करना बहुत ही कठिन है। और फिर सबसे बड़ी बात यह है कि इतने पर्याय एक साथ दे देने पर भी 'अच्छा' शब्द का ठीक-ठीक आशय इसलिए समझ में नहीं आ सकता है कि उन पर्यायों की भी कहीं कोई समुचित व्याख्या नहीं है। हर शब्द के साथ घूम-फिर कर वही पर्याय आते हैं। उनकी आत्मा या वास्तविक आशय का परिज्ञान करानेवाली व्याख्या कहीं नहीं मिलती। यही हाल 'आन' का है। उसमें सात-आठ अर्थ विभाग हैं, जिनमें से अनेक अर्थ-विभागों में दिये हुए पर्यायों का आपस में कोई मेल नहीं बैठता। उदाहरणार्थ चौथे अर्थ-विभाग में, ढंग, तर्ज, अदा और छबि, और सातवें अर्थ-विभाग में अदब, लिहाज, दबाव, लज्जा, शर्म, हया, शंका, डर और भय ऐसे पर्याय हैं जो अर्थ और आशय के विचार से एक दूसरे से बहुत दूर जा पड़ते हैं। कहाँ ढंग और कहाँ छबि! कहाँ अदब कहाँ शंका और कहाँ भय! और तिस पर व्याख्या कहीं नहीं। मानक कोष के लिए इस एक 'आन' शब्द की व्याख्या निश्चित करने और तर्क-संगत रूप में उसका पूरा विवेचन करने में मुझे चार दिन लगाने पड़े थे और 'अभी' के विवेचन में छः दिन लगे थे। 'अभी' शब्द का शब्द-सागर में एक ही अर्थ है—इसी क्षण, इसी समय, इसी वक्त। पर जब हम कहते हैं—(क) वह अभी चार ही वर्ष का था कि उसके पिता का देहान्त हो गया, अथवा (ख) ग्रहण तो अभी माघ में लगेगा, अथवा (ग) यह तो अभी कल की बात है। तो क्या इन प्रयोगों में भी 'अभी' का वही अर्थ है जो शब्द-सागर में दिया गया है? कदापि नहीं[1]। इसी लिए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ठेठ हिन्दी के बहुत ही छोटे और साधारण समझे जानेवाले शब्दों पर हमें नये ढंग से और पूरा विचार करना चाहिए।

प्रायः होता यही है कि पारिभाषित और व्याख्यात शब्द तो बहुत अधिक सरल होता है, पर उसकी परिभाषा या व्याख्या करना बहुत ही कठिन होता है, और इस-लिए उसकी परिभाषा और भी अधिक जटिल तथा दुरूह हो जाती है। यह ठीक है कि बहुत से पारिभाषिक और वैज्ञानिक शब्द ऐसे होते हैं जिनकी ठीक और पूरी व्याख्या सरल और सुबोध रूप में नहीं हो सकती, फिर भी अच्छे कोशकार का काम ही है उन्हें यथा-साध्य बोध-गम्य बनाना। यहीं जाकर कोशकार की योग्यता और

१. मानक 'हिन्दी कोश' के लिए ऐसे सभी शब्दों का बिलकुल नये ढंग से और पूरा तथा व्याख्यात्मक विवेचन मैंने अपने ढंग से किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूक्ष्म-दर्शिता की परीक्षा होती है। वह यदि परिभाषा या व्याख्या थोड़े में ऐसे ढंग से की जाती है कि जिज्ञासु पाठक सहज में उसके स्थूल रूप से परिचित हो जायँ। कुछ शब्दों की कुछ विशिष्ट क्षेत्र में असाधारण प्रकार की व्याख्या या पारिभाषिक विवेचन होता है, पर शब्दकोशों में उनका ऐसी व्याख्या या विवेचन की आवश्यकता होती है, जिसे सब लोग सहज में समझ सकें। कुछ शब्द ऐसे भी (यथा—अधिकार, धातु, मात्रा, मूल, योग, रस, विधि, सम आदि) होते हैं, जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों या शास्त्रों में कुछ विशेष प्रकार के अर्थ रखते हैं। ऐसे अवसरों पर इस बात का संकेत कर देना भी कोशकार का कर्तव्य हो जाता है कि इस शब्द का यह अर्थ अमुक क्षेत्र या शास्त्र से संबंध रखता है।

इसके सिवा कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं, जिनके अर्थ के संबंध में तो विशेष विवाद नहीं होता, पर जिनकी व्याख्याएँ अलग अलग शास्त्रों में अलग अलग प्रकार से होती हैं। तत्त्व, द्रव्य, धर्म, मन सरीखे बहुत से ऐसे शब्द हैं, जिनका आध्यात्मिक क्षेत्र में एक प्रकार से अर्थ या व्याख्या की जाती है, दार्शनिक क्षेत्र में दूसरे प्रकार से, भौतिक विज्ञान में तीसरे प्रकार से और मनोविज्ञान में चौथे प्रकार से।[1] ऐसे अवसरों पर कोशकार का कर्त्तव्य है कि वह अर्थ के आरंभ में इस बात का संकेत कर दें कि अमुक शास्त्र या विज्ञान में इस बात का अर्थ लिया जाता है, अथवा अर्थ के अन्त में कोष्ठक में भी इस बात का निर्देश किया जा सकता है। इस प्रकार के निर्देश का ध्यान शब्दों के अतिरिक्त मुहावरों के संबंध में भी रखना पड़ता है, और कुछ अवसरों पर यह बतलाना भी आवश्यक हो जाता है कि अमुक शब्द या अर्थ किस भौगोलिक क्षेत्र या प्रदेश का है।

कोशकारों के सामने इधर हाल में वेब्स्टर की न्यू डिक्शनरी ने एक नया आदर्श रखा है जो बहुत ही उपयोगी तथा उपादेय होने के कारण अच्छे, और बड़े शब्दकोशों के लिए विशेष रूप से अनुकरणीय है। उसमें अनेक शब्दों के अंतर्गत

---

१. उदाहरण के लिए अर्थ-शास्त्र में भूमि का अर्थ जमीन या पृथ्वी तक ही परिमित नहीं रहता, बल्कि पृथ्वी के गर्भ, धरातल के ऊपरी भाग और उस पर की सब चीजों (नदी, पर्वत, गरमा, सरदी, वर्षा आदि) का भी उसमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि सभी चीजों से किसी न किसी प्रकार का उत्पादन होता है या हो सकता है। इसके विपरीत उक्त शास्त्र में मनुष्य का श्रम ही, 'श्रम' माना जाता है। उसमें घोड़े, बैलों या पशु-पक्षियों का श्रम इसलिए 'श्रम' नहीं माना जाता कि आर्थिक दृष्टि से मनुष्य के लिए उपयोगी होने पर भी स्वयं उन पक्षियों के लिए उत्पादक या उपयोगी नहीं होता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनसे मिलते-जुलते पर्यायों के सूक्ष्म अंतर भी दिखलाये गये हैं। यथा–फीयर (Fear) के अंतर्गत ड्रेड (Dread) फ्राइट (Fright) एलार्म (Alarm) डिस्मे (Dismay) टेरर (Terror) और पैनिक (Panic) के सूक्ष्म अंतर भी बतला दिये गये हैं। ऐसा यही सोचकर किया गया है कि कोशकार का काम शब्दों के अर्थ बतला देने से ही समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि इससे भी आगे बढ़कर उसका काम होता है—लोगों को शब्दों के ठीक प्रयोग बतलाना। हमारे यहाँ ऐसे सैकड़ों-हजारों शब्द मिलेंगे, जिनके पारस्परिक सूक्ष्म अंतर बतलाये जा सकते हैं, और इस प्रकार जिज्ञासुओं को शब्दों पर नये ढंग से विचार करने का अभ्यास कराया जा सकता है। इसी दृष्टि से मानक हिंदी कोश में ठंढ और ठंढक; तुल्य, सदृश और समान, मात्रा और मान; सहना, झेलना और भोगना; संशय और सन्देह साहित्य और वाङ्मय सरीखे अनेक शब्दों के अन्तर्गत उनके पारस्परिक सूक्ष्म भेद बतलाने का भी प्रयत्न किया गया है। यह ऐसा नया क्षेत्र है जिसमें भावी कोशकारों को अधिकाधिक काम करके दिखलाना चाहिए।

शब्दों की व्याख्या करते समय ध्यान में रखने की दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह यथा-साध्य बोध-गम्य या स्पष्ट होनी चाहिए—पहेली के रूप में या ऐसी नहीं होनी चाहिए, जिसे समझने के लिए जिज्ञासु को सिर-पच्ची करनी पड़े या सिर-पच्ची करने पर भी निराश या विफल ही रहना पड़े। व्याख्या के संबंध में सिद्धान्त यह होना चाहिए कि वह जिज्ञासुओं को निराश या खिन्न न करने पावे। बहुत ही साधारण ज्ञान रखनेवाले जिज्ञासु का तो उससे पूरा सन्तोष हो ही जाय, पर यदि वह व्याख्या किसी विद्वान् या विशेषज्ञ के सामने पड़े, तो वह भी मान ले कि कोशकार ने यह विषय अच्छी तरह समझकर तो लिखा ही है, अच्छी तरह समझाकर भी लिखा है।

शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध में एक सर्व-मान्य नियम यह है कि जिस शब्द की व्याख्या की जाय, स्वयं वह शब्द उस व्याख्या में नहीं आना चाहिए। कारण यह है कि परिभाषा या व्याख्या का मुख्य उद्देश्य कठिन को सहज या दुर्बोध को सुबोध करने के लिए ही होता है। और जो बात या विषय पहले ही दुर्बोध हो वह कुछ दूसरे शब्दों की सहायता से ही सुबोध कराया जा सकता है। कोशकार के लिए भी इस नियम का पालन आवश्यक तो है ही, पर इसके कारण कभी-कभी उसका काम बहुत कठिन भी हो जाता है। मुझे याद हैं कि हिन्दी शब्द सागर के सम्पादन के समय इसी दृष्टि से 'करना' क्रिया की व्याख्या और विवेचन करने के लिए स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल को और मुझे पूरे तीन दिन लगाने पड़े थे। इस सम्बन्ध में अन्यान्य अनेक प्रामाणिक कोश देखकर यह नीति निर्धारित करनी पड़ी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थी कि शब्द की जो पहली और मूल व्याख्या हो, उसमें तो वह शब्द कदापि नहीं आना चाहिए, बाद के अर्थों में भी जहाँ तक हो सके, वह शब्द बचाना चाहिए। पर कुछ अवस्थाओं में बाद के अर्थों में वह शब्द प्रयुक्त करना इसी लिए उतना दोषपूर्ण नहीं माना जाता कि पहले अर्थ में उसकी यथेष्ट व्याख्या हो चुकी होती है। अंगरेजी के अनेक अच्छे शब्दकोशों में यही परिपाटी दिखाई देती है और हिन्दी में भी यह आपत्तिजनक नहीं मानी जानी चाहिए।

अब हम अर्थों और विवरणों का एक दूसरी दृष्टि से विचार करना चाहते हैं। अधिकतर शब्द ऐसे होते हैं, जिनके अनेक अर्थ होते हैं। पर वे सब अर्थ एक साथ ही उस शब्द में आकर लगे हुए नहीं होते। उनके अर्थ-विकास का भी एक क्रम---एक इतिहास होता है, और अच्छे कोशकार के लिए उस क्रम या इतिहास का भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। यदि वे सब अर्थ एक साथ गड्ड-मड्ड करके बिना किसी क्रम या व्याख्या के रख दिये जायँ तो एक भद्दे ढेर की तरह दिखाई देंगे। अच्छे कोशकार विवरणों और अर्थों का भी एक निश्चित क्रम लगाते हैं, और उन्हें नियमित तथा व्यवस्थित रूप में सजाकर जिज्ञासुओं के सामने रखते हैं। साधारणतः शब्दों के अर्थ तीन प्रकार के होते हैं--मूल अर्थ या शब्दार्थ, चलित अर्थ और लाक्षणिक अर्थ। किसी शब्द का जो आरम्भिक और मूल अर्थ होता है, वही शब्दार्थ कहलाता है। उस मूल अर्थ के बाद उसमें कुछ और अर्थ लगते हैं, जिन्हें चलित अर्थ कहते हैं। कभी-कभी कुछ शब्दों के मंगल-भाषित, व्यंग्यात्मक, परिहासिक आदि लाक्षणिक अर्थ भी लग जाते हैं। मंगल-भाषित का अभिप्राय है किसी अमंगल-सूचक शब्द के स्थान पर किसी मंगल-वाची शब्द का प्रयोग करना। सुहागिन स्त्रियों की चूड़ियाँ उस समय उतारी या तोड़ी जाती हैं, जब वे विधवा होती हैं, इसी लिए साधारण अवस्था में वे चूड़ी के उतारने के लिए चूड़ियाँ बढ़ाना और चूड़ी टूटने के समय 'चूड़ी बढ़ना' का प्रयोग करती हैं। दूकान बंद करना कार-बार के समाप्त हो जाने की अशुभ भावना का सूचक है। इसलिए नित्य रात के समय दूकान बंद करना लोक में 'दूकान बढ़ाना' कहलाता है। इसी प्रकार दीया बुझाना की जगह 'दीया बढ़ाना' कहलाता है। और 'चूल्हा बुझाना' की जगह 'चूल्हा ठंढा करना' कहते हैं। कुछ समाजों और भाषाओं में साधारण जाना शब्द तक अशुभ माना जाता है। इसी लिए महाराष्ट्र में लोग जब कहीं से चलने लगते हैं, तब यह नहीं कहते---मी जातो (अर्थात् जाता हूँ) बल्कि कहते हैं---मी येतो (अर्थात् मैं आता हूँ) यही बात बंगला में भी है। फारसी में भी ऐसे अवसरों पर प्रायः 'मी आयम' कहा जाता है। अर्थात् उक्त प्रसंगों में 'आना' का प्रयोग जाना के अर्थ में होता है। कदाचित् इसी विचार से हिन्दी में भी लोग 'अब मैं जाता हूँ' न कहकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राय: 'अब मैं चलता हूँ' कहते हैं। बहुत कुछ इसी वर्ग में उर्दू भाषा तथा मुसलमानी समाज में एक और प्रकार का प्रयोग प्रचलित है। जब कोई बहुत बड़ा आदमी, रईस या राजा बीमार पड़ता है तब उसके घर के लोग और नौकर-चाकर कहते हैं–आज-कल हुज़ूर के दुश्मनों की तबीयत खराब है। ऐसे अवसरों पर तबीयत की खराबी या बीमारी का आरोप 'हुज़ूर' के बदले उनके 'दुश्मनों' पर कर दिया जाता है। इसे हम अमंगल-वर्जित प्रयोग कह सकते हैं।

व्यंग्य के रूप में लोग प्राय: दुष्ट के अर्थ में भले-आदमी, महात्मा, महापुरुष, हजरत आदि का और किसी के मुँह पर 'कालिख' पोतना, की जगह 'चंदन पोतना या लगाना' का प्रयोग करते हैं। जब गोपियाँ उद्धव से कहती हैं :—"मधुकर श्याम हमारे चोर।" तब भी वे 'चोर' का प्रयोग कटाक्ष और व्यंग्य के रूप में ही करती हैं; उसके वास्तविक अर्थों में नहीं। उर्दू का एक शेर है:—

सबसे तुम अच्छे हो, तुमसे मेरी किस्मत अच्छी;
ये ही कम्बख्त दिखा देती है सूरत अच्छी।

यहाँ पहले तो 'किस्मत' सबसे अच्छी कही गई है और फिर कटाक्ष तथा व्यंग्य के रूप में उसी को 'कम्बख्त' भी कहा गया है।

कभी कभी वाक्यों के कुछ शब्दों के अर्थ केवल प्रसंग के अनुसार और कभी कभी 'काकु' अलंकार के कारण कुछ उलटे हो जाते हैं। जैसे—(क) आप ही तो सबसे चोखे हैं! और (ख) हम उनसे कब बात करते हैं! ऐसे सभी अवसरों पर तो नहीं पर कुछ विशिष्ट अवसरों पर यह संकेत किया जा सकता है कि इस शब्द, पद या मुहावरे का इस अर्थ में प्रयोग परिहास, मंगल-भाषित या व्यंग्य के रूप में होता है अथवा यह अर्थ काकु से निकलता है।

कुछ ऐसी अवस्थाएँ भी होती हैं जिनमें लोग केवल अपनी मनोदशा के अनुसार अथवा अपने मन का भाव सूचित करने के लिए ही किसी को कुछ बुरा-भला कह जाते हैं। गीतों में प्राय: आता है :—पापी पपीहा पी-पी पुकारे। पपीहा वस्तुत: न तो पापी होता है और न पुण्यात्मा; फिर भी विरहिन नायिका उसकी पुकार से पीड़ित होने के कारण उसे 'पापी' कह डालती है। यही बात "सखी री, रतियाँ वैरिन भईं" में के 'बैरिन' शब्द के संबंध में भी। इस प्रकार की मनोदशासूचक शब्दों या पदों के अर्थ शब्द-कोशों में नहीं दिये जाते। इनका अर्थ या आशय पाठकों को प्रसंग के अनुसार ही लगाना या समझना पड़ता है।

कभी-कभी कुछ शब्दों का पारिभाषिक रूपों में भी प्रयोग होने लगता है। उदाहरण के लिए 'भस्म' शब्द लीजिए। इसका मूल या वास्तविक अर्थ है—किसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीज के जल जाने पर उसकी बची हुई राख। परन्तु लोक में उसका चलित अर्थ है—शिव की धूनी की वह राख जो शैव लोग तिलक के रूप में मस्तक भुजाओं, वक्षस्थल आदि पर लगाते हैं। फिर इसमें वैद्यकवाला वह अर्थ भी आ, लगता है, जो धातु को फूँककर तैयार किये हुए रस' शब्द का पर्याय है। यहाँ प्रसंगवश यह भी बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि स्वयं 'रस' के भी बहुत-से अर्थ हैं, जो क्रमशः उसमें लगे हैं। ऐसे अर्थों का ठीक क्रम न रहने के कारण कोश का उपयोग करनेवालों के मन में कई प्रकार के भ्रम हो सकते हैं। उदाहरणार्थ—हिन्दी शब्द-सागर में और उसके अनुकरण पर बने हुए शेष सभी हिन्दी कोशों में 'आल्हा' शब्द के अन्तर्गत पहला अर्थ मिलता है...एक प्रकार का छंद। और तब दूसरे अर्थ में महोवे के प्रसिद्ध वीर योद्धा का उल्लेख मिलता है। इससे यह भ्रम हो सकता है कि आल्हा नामक योद्धा के जन्म से पहले ही वीर नामक छंद का एक दूसरा नाम 'आल्हा' भी चला आ रहा था। पर वास्तविक बात इसके बिलकुल विपरीत है। पहले आल्हा नामक वीर हुआ था, और उसके समय अथवा उसके बाद लोग वीरता-पूर्ण कृत्यों के कथानक और गाथाएँ वीर नामक छंद में बनाने और गाने लगे थे। इसी आधार पर आगे चलकर वीर नामक छंद का दूसरा नाम 'आल्हा' भी पड़ गया था। शब्द-सागर में परिमल का पहला अर्थ दिया है—सुवास या खुशबू; दूसरा अर्थ है—सुगंधित पदार्थ मलने से उत्पन्न होनेवाली सुगन्ध; तीसरा अर्थ है—मलने का कार्य या मालिश; और चौथा अर्थ है—उबटन। परन्तु इस शब्द के अर्थ-विकास की दृष्टि से यह क्रम बहुत कुछ उलटा-पलटा और बिलकुल गलत है। पहला अर्थ होना चाहिए—अच्छी तरह मलने की क्रिया या भाव। दूसरा अर्थ होगा—शरीर में सुगन्धित पदार्थ मलना। तीसरा अर्थ होगा—इस प्रकार के पदार्थ के मलने से उत्पन्न होनेवाली सुगन्ध; और तब चौथा अर्थ होगा—सुवास या सुगन्ध। यही इस शब्द के अर्थ-विकास का क्रम है, और मानक हिन्दी कोश में मैंने 'परिमल' के अर्थ इसी क्रम से दिये हैं। भविष्य में जो कोश बनें, उनमें यथा-साध्य अर्थों के ऐसे क्रमिक विकास का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। प्रामाणिक हिन्दी कोश के पहले संस्करण में अधिकार, करण, परिभाषा, विधि, साधारण, साहित्य, सूचना आदि का और दूसरे संस्करण में कवच, छाया, प्रकार, मात्रा, रस, रूपक, विकल्प सरीखे हजारों शब्दों का इसी दृष्टि से और बिलकुल नये ढंग से क्रमिक विवेचन किया गया है। अब मानक हिन्दी कोश में तो इस प्रकार के हजारों शब्दों का बिलकुल नये ढंग से विवेचन किया गया है और उनके अर्थ नये और युक्तिसंगत क्रम से रखे गये हैं। सारांश यह है कि शब्दकोशों में शब्द के सब अर्थ दे देना ही पर्याप्त नहीं है, उनके अर्थों का क्रम भी ठीक और संगत होना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दों के अर्थों का क्रम लगा लेने पर यदि उन्हें एक बार ध्यान से देख लिया जाय तो पता चलेगा कि वे अर्थ कुछ विशिष्ट वर्गों या विभागों में बँट सकने के योग्य हो सकते हैं, और अच्छे कोशकार को ऐसे अर्थों के वर्ग या विभाग भी निश्चित करने पड़ते हैं। प्रत्येक वर्ग या विभाग में कुछ अलग अलग प्रकार के शब्द भी आते हैं, और इस प्रकार के सब अर्थ एक साथ आने चाहिए। उदाहरणार्थ—रस शब्द लीजिए। इसके कुछ अर्थ तरल पदार्थों के वाचक होते हैं, कुछ घन पदार्थों के और कुछ अमूर्त्त भावनाओं या अनुभूतियों से संबद्ध होते हैं और सम्भवतः इसी क्रम से इसके अर्थों का विकास भी हुआ है। अतः इसके अर्थ भी इसी क्रम से होने चाहिए। फिर 'रस' शब्द में जीभ से संबंध रखनेवाले छः रसों का जहाँ उल्लेख हो, वहीं उसके बाद यह भी उल्लेख होना चाहिए कि काव्य में यह इस अर्थ के आधार पर छः की संख्या का भी वाचक है, और जहाँ साहित्य के नौ रसों का उल्लेख हो, वहीं उसके बाद उसके ६ की संख्या के वाचक होने का भी उल्लेख होना चाहिए।

शब्दों के अर्थ देते समय उनका ठीक-ठीक पार्थक्य दिखलाने और विभाग करने के लिए उनके साथ संख्यासूचक अंक देना बहुत आवश्यक होता है। हिन्दी में यह उपयोगी प्रथा 'हिन्दी शब्द-सागर' से चली थी, और कुछ दूसरे कोशों ने भी उसका अनुकरण किया है। इससे जिज्ञासुओं को अर्थ समझने में बहुत सुभीता होता है और किसी प्रकार का भ्रम नहीं होने पाता। स्वयं कोशकार के लिए भी अर्थ-सूचक संख्याएँ देना विशेष रूप से उपयोगी होता है। मान लीजिए कि हम किसी शब्द के आगे किसी ऐसे दूसरे शब्द का अभिदेश करना चाहते हैं, जिसके कई अर्थ हैं जो सबके सब उद्दिष्ट नहीं हैं, बल्कि उनमें से कोई विशेष अर्थ ही उद्दिष्ट है। उस समय उस शब्द की अर्थ-संख्या हमारे अभिदेश के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। पर प्रायः कोशकार केवल स्थान की बचत करने के लिए अर्थ-संख्या रखते ही नहीं। शायद वे समझते हैं कि इस प्रकार बचाये हुए स्थान का उपयोग शब्दों की संख्या बढ़ाने में किया जा सकता है। पर इधर-उधर के बहुत से शब्द इकट्ठे करके बहुत से अर्थ एक साथ खिचड़ी के रूप में तैयार करके लोगों के सामने रखने की अपेक्षा थोड़े से ऐसे शब्द देना कहीं अच्छा है, जिनके अर्थ ठीक और पूरे हों और उचित क्रम या व्यवस्थित रूप में रखे गये हों। अँगरेजी के अच्छे कोशों में इस प्रकार का बहुत सूक्ष्म-विचार करके उनके अर्थ-विभाग किये जाते हैं। उनमें प्रत्येक विभाग के साथ संख्या-सूचक अंक तो रहते ही हैं, उन विभागों के अन्तर्गत क, ख, ग, घ, आदि देकर उनके उप-विभागवाले अर्थ भी दिये जाते हैं।[1]

१. प्रामाणिक हिन्दी कोश के पहले संस्करण में शब्दों के अर्थों के साथ भी और मुहावरों के अर्थों के साथ भी संख्या-सूचक अंक ही रखे गये थे। पर इससे कहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थों के ठीक विभाग और उप-विभाग और क्रम लगा लेने के बाद एक और बात का ध्यान रखना चाहिए। कभी-कभी कुछ शब्दों के विशिष्ट अर्थों के साथ कुछ विशिष्ट मुहावरे, पद, कहावतें, क्रिया-प्रयोग आदि सम्बद्ध होते हैं। ये सब बातें भी अपने ठीक स्थान पर, अर्थात् उन्हीं अर्थों के तुरन्त बाद होनी चाहिएँ, जिनका पालन सारे कोश में आदि से अन्त तक एक-सा हो। यदि पहले क्रिया-प्रयोग, तब पद और अन्त में मुहावरे या कहावतें हों तो और भी अच्छा है। परन्तु साधारण क्रिया-प्रयोग, तब पद और अन्त में मुहावरे या कहावतें हों तो और भी अच्छा है। परन्तु साधारण क्रिया-प्रयोगों और मुहावरों में जो सूक्ष्म अंतर होता है, उसका कोशकार को पूरा और स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। उदाहरण के लिए 'हजामत बनाना' प्रयोग लीजिए। बिलकुल साधारण अर्थ में तो 'हजामत' के साथ 'बनाना' शब्द क्रिया मात्र के रूप में लगा है, पर किसी को मूर्ख बनाकर उससे रुपए वसूल करने के अर्थ में वह मुहावरा है। यही बात 'कान काटना', 'गोली मारना', 'चाल चलना', 'जान देना', 'मुँह खोलना', 'लोहा लेना' सरीखे प्रयोगों के संबंध में भी है, जिनमें एक अर्थ के विचार से तो क्रियाएं अपने साधारण रूप में लगी हैं पर दूसरे अर्थ के विचार से वे मुहावरा बनाती हैं। मुहावरों और कहावतों में भी इस प्रकार का बहुत बड़ा अन्तर है, और उस अन्तर का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए—दोनों को एक साथ मिला नहीं दिया जाना चाहिए।

मुहावरों के संबंध में अच्छे कोशकारों के सामने एक और बहुत बड़ी कठिनता उपस्थित होती है, जिससे पार पाने के लिए गंभीर विचार और सूक्ष्म-दर्शिता की आवश्यकता होती है। साधारणतः मुहावरे कई शब्दों के पद होते हैं, और उन्हें देखकर यह निश्चय करना कठिन होता है कि कोई मुहावरा उसमें आये हुए किस शब्द के अन्तर्गत रखा जाय। साधारण नियम यही है कि सारे पद में जो शब्द मुख्य हो, उसी में वह पद (या मुहावरा) रखा जाता है। 'शब्द-सागर' में इस सिद्धान्त का यथासाध्य बहुत कुछ पालन हुआ है, और उसमें हिन्दी के भावी कोश-कारों के लिए इस समस्या का बहुत कुछ निराकरण हो चुका है। फिर भी कुछ स्थलों पर, दृष्टि-दोष से, उसमें अनेक भूलें रह ही गई हैं। उदाहरणार्थ—उसमें 'ऊपर' शब्द के अन्तर्गत 'किसी के ऊपर टूट पड़ना' और 'किसी के ऊपर छार पड़ना' मुहावरे भी दे दिये गये हैं। इस संबंध में ध्यान देने की पहली बात यह है कि उक्त

कहीं जिज्ञासुओं को भ्रम हो सकता था, इसलिए दूसरे संस्करण में मुहावरों के अर्थों के साथ संख्या-सूचक अंकों की जगह उनके विभेद सूचित करने के लिए क, ख, ग आदि वर्ण लगाये गये हैं। यही परिपाटी मानक हिन्दी कोश में भी रखी गई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुहावरों में 'किसी के ऊपर' पद प्रधान या मुख्य नहीं हैं, क्योंकि इसका रूप 'किसी पर' भी हो सकता है वस्तुतः प्रधानता तो 'टूट पड़ना' और 'छार पड़ना' की है। अतः इनमें का पहला मुहावरा 'टूटना' के अन्तर्गत और दूसरा 'छार' के अन्तर्गत जाना चाहिए। इन मुहावरों में किसी के ऊपर या किसी पर का कुछ भी महत्त्व नहीं है। यदि हम 'ऊपर' का महत्त्व मानें तो 'पर' का क्यों न मानें? यदि 'ऊपर' या 'पर' का ही महत्त्व माना जाय, तब तो इधर-उधर के सैकड़ों-हजारों मुहावरे (जैसे किसी पर मार पड़ना, किसी को लानत भेजना आदि) 'ऊपर' या 'पर' के अन्तर्गत ही ला रखने पड़ेंगे, इसी प्रकार 'लगे हाथ' या 'लगे हाथों' मुहा० 'हाथ' के अन्तर्गत रहना चाहिए, 'लगना' के अन्तर्गत नहीं। 'गोली मारना' मुहा० 'गोली' के अन्तर्गत और 'चाल चलना' मुहा० 'चाल' के अन्तर्गत रहना चाहिए।

मुहावरों के रूपों और अर्थों के स्पष्टीकरण के संबंध में एक और बात ध्यान देने योग्य है। कोशों में मुहावरे ऐसे रूप में देने चाहिए कि उनका ठीक-ठीक प्रयोग भी लोगों को तुरन्त और स्पष्ट ज्ञात हो जाय। उदाहरणार्थ, हिन्दी शब्द-सागर में 'आँख' के अन्तर्गत सैकड़ों मुहावरे आये हैं; जैसे—आँख उठाना, आँख खोलना, आँख लगना आदि। ऐसे प्रत्येक मुहावरे का एक ही रूप रखकर उसके अन्तर्गत कई कई अर्थ एक साथ दे दिये हैं, जिससे उस मुहावरे का आशय और प्रयोग ठीक तरह से स्पष्ट नहीं होने पाता। 'आँख लगना' ही लीजिए, जिसके हिन्दी शब्द-सागर में तीन अर्थ आये हैं—नींद लगना, प्रीति होना और टकटकी लगना। पर इन तीनों अर्थों में प्रयोग के विचार से 'आँख लगाना' के ये तीन रूप होते हैं—किसी की आँख लगना, किसी से आँख लगना और किसी ओर आँख लगना। अतः आगे चलकर बनने वाले अच्छे कोशों में यह मुहावरा इन रूपों में आना चाहिए—(किसी की) आँख लगना, (किसी से) आँख लगना और (किसी ओर) आँख लगना। इसके सिवा इस मुहावरे का एक चौथा अर्थ भी होता है—प्राप्ति की इच्छा से ध्यान लगा रहना। और इस दृष्टि से इसका रूप होगा—(किसी चीज पर) आँख लगना। मानक हिन्दी कोश में ये सब मुहा० इन्हीं रूपों में दिये गये हैं। इस प्रणाली से पाठकों का विशेष उपकार होगा, मुख्यतः अन्यान्य भाषा-भाषी सहज में इनका ठीक-ठीक प्रयोग करना सीख सकेंगे। जो बात यहाँ आँख के सम्बन्ध में कही गई है, वही सैकड़ों-हजारों अन्यान्य शब्दों के मुहावरों के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए।

प्रत्येक शब्द का अर्थ उसके उसी रूप के अन्तर्गत आना चाहिए, जो सबसे अधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित हो तथा मानक माना जाता हो। शब्द के शेष पर्यायों या रूपों के आगे वही मानक और विशेष प्रचलित रूप अभिदिष्ट होना चाहिए, जिसके साथ अर्थ, व्याख्याएँ मुहावरे आदि दिये हों। परन्तु अभिदेश करते समय कोशकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को बहुत सावधान रहना चाहिए। बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जो एक से अधिक शब्द-भेदवाले होते हैं। यह ठीक है कि संज्ञा शब्द का अभिदेश संज्ञा के प्रति ही होगा,[1] विशेषण का विशेषण और क्रिया-विशेषण का क्रिया-विशेषण के प्रति। यदि किसी अकर्मक क्रियावाले शब्द के आगे लिखा हो—दे० 'चूना'; तो जिज्ञासु को 'चूना' का वही अर्थ देखना चाहिए, जो उसके अकर्मक क्रियावाले विभाग में हो। और यदि किसी संज्ञा शब्द के आगे लिखा हो—'दे० 'चूना' तो जिज्ञासु को उसके संज्ञावाले विभाग के अन्तर्गत ही उसका अर्थ देखना चाहिए। यह तो हुआ जिज्ञासु का काम। पर हम सभी जिज्ञासुओं से यह आशा नहीं रख सकते कि वे इस प्रकार की सूक्ष्म बातों या भेदों का हर समय ठीक और पूरा ध्यान रखेंगे। अतः उनके मार्ग-प्रदर्शन और सहायता के लिए कुछ सुभीता कर देना भी कोशकार का कर्तव्य होता है। उसे अभिदेश के समय उस अर्थ का भी कुछ संकेत कर देना चाहिए, जो इस प्रसंग में अभीष्ट हो। जैसे—यदि 'चूना' का अ० क्रियावाला अर्थ उद्दिष्ट हो तो कोष्ठक में उसके आगे टपकना, रसना या और कोई ऐसा प्रसिद्ध पर्याय दे दे देना चाहिए, जो 'चूना' के क्रियावाले अर्थ में आया हो, और यदि संज्ञा वाला अर्थ अभीष्ट हो तो 'चूना' के आगे कोष्ठक में 'फूँका हुआ पत्थर' या इसी प्रकार का और कोई संकेत कर देना आवश्यक है। जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, अभिदेश के लिए शब्दों की अर्थ-संख्या भी बहुत उपयोगी होती है। यदि हम किसी शब्द के आगे लिख दें—दे० काँटा, घाट, प्रत्यय, मन, राग, वाचन या शाखा तो जिज्ञासु को उस शब्द के सभी अर्थ देखने पड़ेंगे, और तब अपनी बुद्धि से यह सोचना पड़ेगा कि इन सब अर्थों में से कौन-सा अर्थ अभीष्ट है। पर यदि हम लिख दें—दे० 'काँटा' (पक्षियों का), 'काँटा' (तराजू का), 'काँटा' (गणित का) या दे०। 'प्रत्यय' (सृष्टि का) 'प्रत्यय' (साहित्य का), या दे० 'मन' (अंतःकरण) 'मन' (तौल), या दे० 'शाखा' (वृक्ष की), 'शाखा' (वेद की) आदि तो पाठकों को अभीष्ट अर्थ तक पहुँचने या बात समझने में विशेष सुभीता होगा। और हो सकता है कि इतने अभिदेश से ही जिज्ञासु का उस समय काम चल जाय, और उसे अभिदिष्ट शब्द देखने की आवश्यकता न रह जाय। अथवा जहाँ किसी कारण से ऐसा न हो सके, वहाँ यदि हम लिख दें—दे० 'प्रत्यय' ४ 'राग' ८ या 'वाचन' ६ तो जिज्ञासु बिना किसी कठिनता के और सहज में हमारा आशय समझ लेंगे और तुरन्त अभीष्ट अर्थ तक पहुँच जायँगे।

---

१. कभी-कभी स्त्री० संज्ञा किसी पुंलिंग संज्ञा के प्रति भी अभिदिष्ट होती है और प्रतिक्रमात् भी। ऐसे अवसरों पर भी अभिदिष्ट शब्द के बाद कोष्ठक में उसके विशिष्ट अर्थ का संकेत कर देना आवश्यक होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु अभिदेशों के सम्बन्ध में कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। कोशों में और विशेषत: बड़े-बड़े कोशों में अभिदेशों का प्रयोग जहाँ तक हो सके, खूब सोच समझकर और यथा-साध्य परिमित होना ही चाहिए। इसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि ऊपर से समानार्थक जान पड़नेवाले शब्दों में भी प्राय: अर्थ सम्बन्धी कुछ सूक्ष्म भेद होते हैं, और ऐसे अर्थोंवाले शब्दों में अभिदेशिक सम्बन्ध करना ठीक नहीं होता। दूसरे बहुत बड़े और कई खंडोंवाले कोशों में अभिदिष्ट शब्द तक पहुँचने के लिए कुछ अतिरिक्त परिश्रम करना और समय लगाना पड़ता है। तीसरे, अभिदिष्ट शब्द प्राय: स्वतंत्र व्युत्पत्तिवाले होते हैं, और कुछ अवस्थाओं में व्युत्पत्ति ढूँढ़नेवाले जिज्ञासु अभीष्ट सिद्धि से वंचित रह जाते हैं। चौथे, कभी-कभी कम प्रचलित अभिदिष्ट शब्द अपने स्वतंत्र उदाहरण की भी उपेक्षा रखते हैं। ये सभी बातें ऐसी हैं जिनका अच्छे कोशकार को ध्यान रखना पड़ता है।

एक बात और है। शब्दों के आगे अभिदेश देते समय कोशकार को यह भी देख लेना चाहिए कि हम जिस शब्द की ओर संकेत कर रहे हैं, उसमें ठीक और पूरा अर्थ आया भी है या नहीं। हिन्दी शब्द-सागर के पहले संस्करण में 'कलछी' के आगे छपा था—दे० 'कलछा', और 'कलछा' के आगे छपा था—दे० 'कलछी', पर अर्थ या व्याख्या दोनों में से किसी शब्द के आगे नहीं थी। जिस दूसरे शब्द की ओर संकेत किया जाता है, वह शब्द देखने पर उसके आगे किसी तीसरे शब्द का अभिदेश मिलता है, जिससे जिज्ञासु को उलझन होती है। यह भी कोश का बड़ा दोष माना जाता है, और अच्छे कोशकारों को इससे भी बचना चाहिए।

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ-विवेचन का स्वरूप

अभी

हिन्दी का 'अभी' शब्द लीजिए जो बहुत ही छोटा, बहुत ही निरीह और बहुत ही साधारण लगता है और जिसका व्यवहार नित्य सभी लोग दिन में बीसों-पचीसों बार करते हैं। यह 'अब' और 'ही' के योग से बना है, और इसका सीधा-सादा अर्थ है—इसी समय। इसी आधार पर हिन्दी शब्दसागर में इसका अर्थ दिया गया है—इसी क्षण, इसी समय, इसी वक्त। जैसे—अभी पत्र लिखो। अर्थात् इसी क्षण या तत्काल पत्र लिखो, कुछ भी विलंब मत करो। यह केवल वर्तमान काल से सम्बन्ध रखनेवाला एक ही अर्थ है जो तीन भिन्न-भिन्न रूपों में दिया गया है। साधारणतः इस शब्द का यही अर्थ अलम् समझा जायगा। पर क्या सचमुच 'अभी' का इसके सिवा और कोई अर्थ नहीं होता? मुझे तो इसके अनेक ऐसे अर्थ तथा प्रयोग मिलते हैं जो वर्तमान काल के सिवा भूतकालिक और भविष्यत्कालिक प्रसंगों से भी सम्बन्ध रखते हैं और इसी लिए जो शब्दसागर के उक्त अर्थ की व्याप्ति के बाहर दिखाई देते हैं। आइये, जरा वे अर्थ और प्रयोग देखिये। पहले वर्तमान-कालिक प्रसंग ही लीजिये। हम कहते है—अभी बारह बजे हैं, अभी बैठे रहो अथवा अभी जल्दी मत करो। स्पष्ट है कि इन प्रयोगों में 'अभी' का अर्थ इसी समय नहीं है, बल्कि 'इस समय' या 'प्रस्तुत समय में' है। शब्दसागर में दिये हुए उक्त अर्थ के 'इसी' में जो जोर है, वह हमारे दूसरे अर्थ के 'इस' में नहीं रह गया है। ऐसे अवसरों पर 'अभी' में प्रस्तुत के कुछ पूर्ववर्ती क्षणों का भी और कुछ परवर्ती क्षणों का भी अंतर्भाव हो जाता है। यह तो बहुत ही साधारण अन्तर हुआ! पर इसके सिवा 'अभी' के अनेक ऐसे प्रयोग भी होते हैं, जिनमें अर्थ के विचार से बहुत अधिक अन्तर है। उदाहरणार्थ अभी तो गरमी के दिन हैं, या अभी तो वही पुराना नियम चल रहा है, आदि। इन प्रयोगों में 'अभी' के ऊपर वाले दोनों अर्थों में से कोई अर्थ ठीक नहीं घटता, बल्कि ऐसे अवसरों पर इसका अर्थ होता है—प्रस्तुत या वर्तमान दिनों में, अर्थात् आज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल या इन दिनों। सारांश यह कि उक्त तीनों प्रयोगों में 'अभी' से सूचित होनेवाले काल का मान या व्याप्ति पहले तो एक क्षण से बढ़कर दस-पाँच या दस-बीस क्षणों तक पहुँची है और तब इससे भी आगे बढ़कर उसमें महीनों क्या, बल्कि वर्षों तक को अपनी लपेट में ले लिया है। अब भूतकालिक प्रसंगों में 'अभी' के प्रयोग देखिये। हम कहते हैं—अभी वह सोकर उठा ही था कि उसके कुछ मित्र आ पहुँचे। यहाँ 'अभी' प्रस्तुत या वर्तमान काल से नहीं, बल्कि भूतकाल से सम्बन्ध रखता है और वह किसी विगत काल-मान या उसके किसी उद्दिष्ट अंश की ओर संकेत करता हुआ प्रायः 'उस समय' का अर्थ सूचित करता है।

इससे और आगे बढ़ने पर हमें 'अभी' के कुछ ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जो भविष्यत्काल से सम्बन्ध रखते हैं। हम कहते हैं—वे अभी महीनों यहाँ ठहरेंगे अथवा अभी इस काम में दो महीने और लगेंगे। ऐसे प्रसंगों में इसका अर्थ होता है—इस समय से लेकर किसी आनेवाले निश्चित या अनिश्चित समय तक। यदि तार्किक दृष्टि से इसका अर्थ न भी हो, तो भी इससे कुछ मिलता-जुलता अर्थ तो अवश्य होता है, जो मुख्यतः किसी भावी अवधि से सम्बन्ध रखता है।

इसके सिवा 'अभी' का प्रयोग किसी भावी घटना या बात के सम्बन्ध में केवल जोर देने के लिए भी होता है। जैसे—अभी परसों वे फिर आने को हैं, अथवा ग्रहण तो अभी माघ में लगेगा। उक्त उदाहरणों में 'अभी' का प्रयोग क्रमात् परसों और 'माघ' पर जोर देने के लिए ही हुआ है, कोई विशिष्ट अर्थ सूचित करने के लिए नहीं।

मेरा नम्र निवेदन है कि हिन्दी की वर्तमान मर्यादापूर्ण स्थिति का ध्यान रखते हुए हिन्दी वालों और विशेषतः भावी कोशकारों को शब्दों के अर्थों का विचार या विवेचन करते समय इस प्रकार के सूक्ष्म अन्तरों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। भाषिक दृष्टि से हिन्दी की उन्नति इसी प्रकार की बातों का ध्यान रखने और विचार करने से होगी।

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आँख

मेरे विद्या-गुरु स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा कहा करते थे—आँख की सभी बातें बुरी होती हैं। उसका आना बुरा, जाना बुरा, उठना बुरा, बैठना बुरा, देखना बुरा, दिखाना बुरा—सब कुछ बुरा। और मैं समझता हूँ कि उनके अर्थों और मुहावरों का विवेचन भी बुरा और सबसे बुरा है।

जैसा कि मैं अपने पहले लेख में लिख चुका हूँ हिंदी में सबसे अधिक मुहावरे आँख से ही सम्बद्ध हैं। ये मुहावरे मुख्यतः तीन भागों में बँट सकते हैं। पहला विभाग तो स्वयं शारीरिक इन्द्रिय से सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों का है। जैसे—आँख आना, आँख उलटना, आँख कड़ुआना, आँखें चार करना या होना, आँखें डबडबाना, आँख पसीजना, आँखें पथराना, आँख फड़कना आदि। ये सब मुहावरे ऐसे हैं जिनका व्यापार स्वयं 'आँख' नाम की इन्द्रिय से होता है। मुहावरों का दूसरा वर्ग आँख की देखनेवाली शक्ति से सम्बन्ध रखता है। इसके अन्तर्गत किसी चीज पर आँख गढ़ना या गढ़ाना, आँख जमाना, आँख डालना, आँख फोड़ना, आँखें बदलना, आँख मिलाना, आँख लड़ाना आदि मुहावरे आते हैं। मुहावरों का एक तीसरा वर्ग वह है जिसमें विशुद्ध लाक्षणिक रूप में होनेवाले प्रयोग आते हैं। जैसे—आँखों का काँटा होना, आँख का पानी ढलना, आँखें घुलाना, आँखें चरने जाना, आँखें चुराना, आँखों का सुरमा चुराना, आँखें बिछाना, आँखों में चरबी छाना या टेसू या सरसों फूलना, आँखों में रखना या पालना, आँखों में रात काटना या बिताना, आँखों में समाना आदि।

इन मुहावरों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुछ अवस्थाओं में 'आँखें' शब्द का एक वचन में प्रयोग होता है और कुछ अवस्था में ,आँखें' या 'आँखों' के रूप में अर्थात् बहुवचन में प्रयोग होता है। पर कुछ अवस्थाएँ ऐसा भी हैं जिनमें 'आँख' का प्रयोग विकल्प से दोनों वचनों में होता है। 'आँख' आना' (रोग) बहुधा एक वचन में ही प्रयुक्त होता है। (पेट फूला है, आँख आयी है।–अकबर) यही बात 'आँख लगना' के सम्बन्ध में भी है जिसके दो अर्थ होते हैं—एक तो झपकी या हलकी नींद आना और दूसरा शृंगारिक प्रसंग में किसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के प्रति अनुरागात्मक प्रवृत्ति होना। किसी उर्दू शायर का एक मिसरा है—'न लगी आँख जब से आँख लगी।' कड़ी निगाह या पूरे ध्यान के अर्थ में भी 'आँख' का सदा एक वचन में प्रयोग होता है। जैसे—उस पर आँख रखना, कोई चीज उठा न ले जाय। यही बात (किसी ओर या किसी की ओर) आँख उठना या उठाना के सम्बन्ध में भी है। जैसे—तुम्हारी ओर कोई आँख नहीं उठा सकता। आँख फड़कना का भी इस दृष्टि से एक वचन में ही प्रयोग होता है कि दोनों आँखें कभी एक साथ नहीं फड़कतीं। आँखें चार करना या लड़ाना, आँखें चरने जाना, आँख तरेरना, आँखें निकालना, आँखें पथराना, आँख फेरना, फोड़ना, बदलना भरना, सेंकना आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं जिनमें आँख का सदा बहुवचन में ही प्रयोग होता है। आँखों का काजल चुराना, आँखों का पानी ढलना आदि प्रयोगों में भी सदा बहुवचन का ही प्रयोग होता है। पर चमकने, मटकने आदि के प्रसंग में 'आँख' अर्थात् एक वचन का भी प्रयोग होता है और 'आँखें' अर्थात् बहुवचन का भी। यही बात आँख (या आँख) ऊँची करना, आँख (या आखें) खुलना, आँख (या आँखें) मिलना, आँख (या आँखें) बन्द होना या मूँदना, आँख (या आँखों) से ओझल होना आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं जिनमें 'आँख' का विकल्प से एक वचन में भी प्रयोग होता है और बहुवचन में भी। आँखों के प्रयोगों और मुहावरों के सम्बन्ध में वचन का यह तत्त्व भाषा की शुद्धता के विचार से बहुत ही महत्त्व का है। अभी तक इस तत्त्व की ओर किसी कोशकार का ठीक और पूरा ध्यान नहीं गया है। यही कारण है कि हिंदी कोशों में 'आँख' के प्रयोगों और मुहावरों के जो रूप मिलते हैं, वे प्रायः वचन की दृष्टि से बहुत ही अपूर्ण तथा भ्रामक हैं। मुझे इस विषय में बहुत कुछ छान-बीन और विचार करना पड़ा है, और उसमें जो-जो कठिनाइयाँ मेरे सामने आई हैं उन्हीं को देखते हुए मुझे इस लेख के आरम्भ में कहना पड़ा है कि आँखों की ओर सब बातों के साथ उसके अर्थों और मुहावरों का विवेचन भी 'बुरा' ही है।

वचन का निर्णय प्रयोगों के आधार पर ही करना पड़ता है और इस निर्णय के लिए ऐसे ही कवियों और लेखकों के प्रयोग लिये जाते हैं, जो भाषा की शुद्धता तथा सौष्ठव के विचार से आदर्श, प्रामाणिक तथा मान्य हों। पर ऐसे प्रयोग ढूँढ़ निकालना और उनके आधार पर कुछ सिद्धांत स्थिर करना सहज नहीं होता, बाजारू या राह चलते आदमी भूल से जो अशुद्ध प्रयोग करते हैं, उन्हें छाँटकर अलग करना और भी कठिन होता है। और इतना सब कुछ कर चुकने के बाद भी कोशकार के सामने कुछ कठिनाइयाँ रह ही जाती हैं। मानक कोश के अगले संस्करण के लिए 'आँख' का जो विवेचन मैं कर रहा हूँ, वह ऐसी ही अनेक कठिनाइयों के कारण अभी तक ठीक, पूरा और सन्तोषजनक नहीं हो पाया है। एक वचन प्रयोग तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक वचन में और बहुवचन प्रयोग बहुवचन में रखकर आधी कठिनता दूर कर ली जाती है, पर अभी तक मैं यह निश्चय नहीं कर पाया हूँ कि उभयवचन प्रयोगों का क्या रूप रखा जाय, अथवा यह तत्व किस प्रकार सूचित किया जाय। यदि कोई सुविज्ञ सज्जन कोई मार्ग बतला सकें तो मैं उनका परम कृतज्ञ होऊँगा।

'हिन्दी शब्द-सागर' में देखने की इंद्रियवाला 'आँख' का एक ही अर्थ दिया गया है, और उसी के पेटे में उससे सम्बन्ध रखनेवाले सब मुहावरे भी दिये गये हैं। उसमें पहला मुहावरा सिर्फ 'आँख' के रूप में दिया है, और उसके चार अर्थ दिये हैं– १. ध्यान। लक्ष। २. विचार। विवेक। परख। ३. कृपा-दृष्टि। दयाभाव। और ४. सन्तति, सन्तान, लड़का-बाला। यह विवेचन प्रकार कई दृष्टियों से ठीक नहीं है। पहली बात तो यह है कि कोई अकेला शब्द कभी मुहावरे के क्षेत्र में नहीं आता। मुहावरे के लिए शब्द के साथ कोई क्रिया अथवा और किसी प्रकार के एक दो शब्द रहने आवश्यक होते हैं। फिर सन्तति या सन्तान 'आँख' का उसी प्रकार कोई अर्थ नहीं है, जिस प्रकार 'अन्धे की लकड़ी' का अर्थ 'सन्तान' नहीं है। 'शब्द सागर' में 'आँख' के इस अर्थ के जो उदाहरण हैं, वे ही मेरे उक्त कथन की सत्यता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। शेष अर्थ स्वयं 'आँख' शब्द के हैं, न कि 'आँख' रूपी मुहावरे के। इनके सिवा 'आँख' के कुछ और अर्थ हैं, जो शब्द-सागर में नहीं आये हैं। ऊपर वचन के सम्बन्ध में एक उदाहरण आया है—उसपर आँख रखना, कोई चीज उठा न ले जाय। इसके सिवा हम कहते हैं—उस आदमी की शक्ल हमारी आँख में है, सामना होते ही हम उसे पहचान लेंगे। इन दोनों प्रसंगों में 'आँख' के जो स्वतन्त्र अर्थ हैं उन्हें भी शब्द-कोशों में स्थान मिलना चाहिए।

'शब्द-सागर' में 'आँख' के मुहावरों के सम्बन्ध में और भी कई प्रकार की भूलें हैं। उसमें आँख का तारा, आँख का परदा, आँख की पुतली, आँखों के डोरे आदि ऐसे प्रयोग भी आ गये हैं, जो किसी प्रकार मुहावरे नहीं माने जा सकते और जो कोरे पद या बोलचाल के प्रयोग मात्र हैं। इसके सिवा आँख का अन्धा गाँठ का पूरा; आँख की बदी भौंह के आगे, आँख में नून राई, आँखों सुख कलेजे ठंढक आदि ऐसी कहावतें भी हैं जो वस्तुतः मुहावरों के अन्तर्गत नहीं बल्कि कहावतों के स्वतन्त्र वर्गीकरण में होनी चाहिएँ। इसके सिवा उसमें और भी कई छोटी-मोटी त्रुटियाँ हैं। पर इन त्रुटियों का मुख्य कारण यही है कि एक तो शब्द-सागर बिलकुल नया और पहला प्रयत्न था। तिस पर उस पहले प्रयत्न में भी 'आँख' का विवेचन बिलकुल आरम्भिक अंश था। उस समय तक कोश की पद्धति या स्वरूप ठीक प्रकार से स्थिर नहीं हो पाया था। परन्तु भविष्य में बननेवाले प्रथम श्रेणी के कोशों में इस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की त्रुटियों की पुनरावृत्ति अशोभन ही होगी और इसी लिए इस क्षेत्र में बिलकुल नये सिरे से काम होना चाहिए।

अब जरा आँखों के मुहावरों और उनके अर्थों के सूक्ष्म अन्तर भी देखिये। एक बहुत ही प्रचलित और प्रसिद्ध मुहावरा है--आँख उठाना। हिन्दी शब्दसागर में इसके अर्थ इस प्रकार आये हैं—(१) ताकना या देखना और (२) बुरी नजर से देखना। बुरा वर्ताव करना। हानि पहुँचाने की चेष्टा करना। यहाँ इस बात से मतलब नहीं है कि इनमें से दूसरा या अन्तिम अर्थ कितना अति व्यापक, असंगत तथा त्रुटिपूर्ण है। यहाँ ध्यान देने का मुख्य विषय स्वयं मुहावरे का रूप (आँख उठाना) है। वस्तुतः यह मुहावरा चार प्रकार से अथवा यों कहना चाहिए कि चार अलग-अलग प्रसंगों में प्रयुक्त होता है। यथा—(१) किसी ओर आँख उठाना—ताकना या देखना, (२) किसी के सामने आँख उठाना—धृष्टता या साहसपूर्वक किसी की ओर देखना या किसी से निगाह मिलाना। (३) किसी चीज की ओर आँख उठाना—प्राप्ति की इच्छा या लोभ-भरी दृष्टि से देखना। और (५) किसी व्यक्ति की ओर आँख उठाना या उठाकर देखना, किसी को कष्ट या हानि पहुँचाने का विचार करना। और इन्हीं चारों दृष्टियों से इस मुहावरे के चार अलग-अलग रूप होने चाहिएँ और वे रूप भी इतने शुद्ध तथा स्पष्ट होने चाहिएँ कि जिज्ञासुओं के लिए भ्रम में रहने की जगह न रह जाय।

इसी प्रकार 'आँख गड़ना' के दो अलग-अलग अर्थ हैं। एक तो आँख में किर-किरी पड़ने के कारण हलकी खटक या चुनचुनाहट होना, और यह मुहावरा स्वयं आँख नामक इन्द्रिय से सम्बद्ध होने के कारण इन्द्रियवाले उसके पहले अर्थ के अंतर्गत जाना चाहिए। 'आँख गड़ना' का दूसरा प्रयोग है—'किसी चीज पर आँख गड़ना' अर्थात् प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी चीज पर ध्यान लगा रहना। यह दूसरा प्रयोग स्वयं इन्द्रिय से नहीं, बल्कि उसकी दृष्टि-शक्ति से सम्बद्ध है, इसलिए वह इसी दूसरे अर्थ के अन्तर्गत जाना चाहिए और उसके पहले यह संकेत भी होना चाहिए कि इसका प्रयोग किसी चीज के सम्बन्ध में होता है। नींद टूटने के अर्थ में 'आँख खुलना' अलग बात है और अलग अर्थ से सम्बन्ध रखता है। पर किसी विषय में भ्रम दूर होने और नया ज्ञान या बोध होने के अर्थ में 'आँख खुलना' अलग बात है और अलग अर्थ से सम्बद्ध है। यही बात 'आँख लगना' के सम्बन्ध में भी है, जिसके कई अर्थ और रूप हैं। जैसे—(क) रोगी की आँख लगना (ख) किसी की प्रतीक्षा में दरवाजे या रास्ते की ओर आँख लगाना, (ग) किसी चीज पर आँख लगाना और (घ) किसी व्यक्ति से आँख लगाना। इसलिए केवल गड़ना, खुलना, लगना आदि क्रियाओं से भ्रम में पड़कर सब प्रयोगों और मुहावरों को एक साथ रखना ठीक नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुहावरों के विवेचन के समय एक और महत्त्वपूर्ण तत्त्व पर ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है। हिन्दी में दो मुहावरे बहुत प्रचलित हैं—आँखे निकालना और आँखें फोड़ना। साधारण मुहावरे के क्षेत्र में 'आँख निकालना' का अर्थ होता है-क्रोधपूर्ण दृष्टि से किसी की ओर देखना। अर्थात् यह 'आँखें तरेरना' का समानार्थक है। इसके पहले प्राय: 'किसी पर' पद का प्रयोग होता है। 'आँखें फोड़ना' का प्रयोग लगातार कोई ऐसा बारीक काम करते रहने के प्रसंग में होता है जिसमें निगाह पर बहुत जोर पड़े। स्त्रियाँ कशीदा काढ़ने में आँखें फोड़ती हैं और प्रेसवालों को प्रूफ देखने में आँख फोड़नी पड़ती हैं। पर हैं ये दोनों मुहावरे दृष्टि शक्ति से ही सम्बद्ध और इनका प्रयोग स्वयं कर्ता या वक्ता के ही सम्बन्ध में होता है। परन्तु प्राचीन काल में दण्डस्वरूप भी किसी की आँखें निकाली या फोड़ी जाती थीं और अब भी डराने धमकाने के लिए कहा जाता है—मेरी तरफ देखोगे तो आँख निकाल लूँगा या फोड़ दूँगा। इन प्रयोगों के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान देने की हैं। एक तो यह कि इनका व्यापार कर्ता या वक्ता पर नहीं, बल्कि दूसरों पर होता है—मध्यम पुरुष के उद्देश्य से होता है और दूसरी सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि ऐसे प्रयोग मुहावरे के क्षेत्र या परिभाषा में कभी आ ही नहीं सकते, क्योंकि इनमें 'निकालना' या 'फोड़ना' क्रियाओं का प्रयोग आँख के साथ बिलकुल साधारण क्रिया के रूप में होता है—ये आँखों से सम्बद्ध क्रिया-प्रयोग मात्र हैं। हम कहते हैं—(क) उसने दीवार पर अपना सिर पटककर फोड़ लिया। अथवा (ख) तुमने बच्चे को लापरवाही से उठाकर उसका हाथ तोड़ दिया। बिलकुल साधारण अर्थ में ऐसे प्रयोग कभी मुहावरे नहीं कहलाते। हाँ, विशिष्ट अर्थों और विशिष्ट प्रसंगों में भले ही इनका प्रयोग मुहावरे के रूप में होता हो। जैसे—(क) तुम्हारे साथ बहस करने में कौन सिर फोड़े। अथवा (ख) इनके सब अधिकार (या सम्पत्ति) छीन लो और इन्हें, हाथ-पैर तोड़कर (अर्थात् अकर्मण्य और निष्क्रिय बनाकर) घर में बैठा दो। सारांश यह कि जिन प्रयोगों में मुहावरोंवाला मुख्य लाक्षणिक तत्त्व न हो, उन्हें मुहावरों के अन्तर्गत नहीं मानना चाहिए और साधारण क्रिया-प्रयोग वाले विभाग में रखना चाहिए। हाँ, आँख निकालना और आँख फोड़ना का साधारण अर्थ कोशों में इस दृष्टि से अवश्य रहना चाहिए कि ये दण्ड देने के ऐसे प्राचीन प्रकार थे, जो आज-कल के सभ्य जगत् में नहीं रह गये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आन

मानक कोश का सम्पादन करते समय मुझे जो बहुत से पेचीदे और विकट शब्द मिले थे उन्ही में 'आन' भी है। मैं पेचीदे और विकट उन शब्दों को मानता हूँ जो आशय और प्रयोग की दृष्टि से अनेक प्रकार की आर्थी छायाओं से युक्त हों, जिनके आर्थी विवेचन के लिए परिभाषा या व्याख्या करना बहुत ही कठिन हो और जिनके आर्थी वर्गीकरण तथा विकास का क्रम निरूपित करने में अनेक प्रकार की जटिल समस्याएँ सामने आता हों। तिस पर यदि ऐसे शब्दों के अनेक शब्द-भेद भी हों और उनकी अलग-अलग निरुक्तियाँ या व्युत्पत्तियाँ भी स्थिर करनी पड़ती हों तो उनका विवेचन और भी पेचीदा तथा विकट हो जाता है। 'आन' भी ऐसे ही शब्दों में से एक है।

हिंदी शब्द-सागर में 'आन' के अर्थ दिये हैं—१. मर्यादा; २. शपथ, सौगंध कसम; ३. दुहाई, विजय घोषणा; ४. ढंग, तर्ज, अदा; ५. क्षण, अल्पकाल; ६. अकड़, ऐंठ, दिखावा ७. अदब लिहाज, दबाव, लज्जा, शर्म, हया; ८. प्रतिज्ञा, प्रण, हठ, टेक। एक तो ये सब अर्थ एक ही व्युत्पत्ति के अंतर्गत आये हैं, दूसरे इनमें कोई व्याख्या नहीं है, पर्याय ही पर्याय हैं और तीसरे कई वर्गों में ऐसे पर्याय भी हैं जो एक दूसरे के वाचक नहीं हैं, और फलत: निरर्थक तथा भ्रामक हैं. फरहंग आसफिया मुहज्जब उल्लुगात आदि उर्दू कोशों में भी कुछ इसी तरह के पर्याय हैं जिनमें अंदाज अदा, नाज, शान आदि पर्याय भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। सारांश यह कि कहीं इसकी कोई ऐसी परिभाषा या व्याख्या नहीं मिलती जिससे अन्य भाषा-भाषी इसका ठीक-ठीक अर्थ और आशय जान सकें, इसके भिन्न-भिन्न अंशों का कार्य-क्षेत्र समझ सकें और इसकी आत्मा तक पहुँच सकें। इसी लिए इसका सारा विवेचन करने में उस समय मुझे पूरे ५ दिन लग गये थे। यह बात आज से ७-८ वर्ष पहले की है। उसके बाद इधर मुझे इसके और भी कई सूक्ष्म अर्थ-भेद तथा प्रयोग मिले, जिनके कारण मुझे पुराने विवेचन का अधिकांश फिर से दोहराकर ठीक करना पड़ा। इस लेख की सब बातें पुराने और नये दोनों विवेचनों के निष्कर्ष के रूप में हैं।

अपने परम प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थों में 'आन' संस्कृत 'आणि' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—प्रतिष्ठा या मर्यादा। उर्दू वाले जो इस शब्द को फारसी का मानते हैं, उसका मूल आधार भी यही है। तात्त्विक दृष्टि से अपने प्राथमिक अर्थ में 'आन'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की परिभाषा होनी चाहिए 'परम्परा प्रतिज्ञा, संकल्प, सिद्धांत आदि के निर्वाह या पालन की वह दृढ़ भावना जिसके मूल में अपनी या अपनी जाति, वर्ग, समाज आदि की प्रतिष्ठा या मर्यादा की रक्षा का विचार प्रधान होता है।' मानक कोश में यही परिभाषा दी गयी है और इसके ये उदाहरण दिये गये हैं—(क) वीर लोग अपनी आन पर प्राण देते हैं। (ख) वह आनवाला रोजगारी है, सहज में नहीं दबेगा। आगे चलकर इसका दूसरा अर्थ होता है—'किसी की उक्त भावना या गौरव के आधार पर या उसका स्मरण कराते हुए दी जानेवाली दुहाई या की जानेवाली पुकार।' तीसरा अर्थ होता है—'उक्त के आधार पर दी जानेवाली शपथ या सौगंद।' आगे चलकर इसका एक और अर्थ होता है—'किसी की मर्यादा या महत्त्व के प्रति मन में होनेवाली आदरपूर्ण धारणा या पूज्य बुद्धि। उदाहरण के रूप में उर्दू का यह शेर है—ठंढियाँ निकाली हैं बच्चे को पड़ा फिरता है। कुछ किसी बात की भी आन है गोइयाँ तुमको।—जान साहब! इसी अर्थ के आधार पर एक मुहावरा भी प्रचलित है—'(किसी की) आन मानना, जिसके दो अर्थ होते हैं। एक तो यह कि बड़ों का आदर करते हुए उनके सामने नम्रता और शालीनता का व्यवहार करना; जैसे—भले घर की स्त्रियाँ बड़े-बूढ़ों की आन मानती हैं। और दूसरा यह कि किसी का बड़प्पन या महत्त्व देखकर उसके सामने झुकना या दबना; जैसे–देखकर कुरती गले में सब्जधानी आपकी। धान के भी खेत ने अब आन मानी आपकी।—नजीर।

फिर इसका एक और अर्थ होता है—'अपनी मर्यादा, सुरक्षा आदि के विचार से किया जानेवाला कोई ऐसा निश्चय जिसके फलस्वरूप किसी काम या बात का निषेध या वर्जन होता हो।' जैसे—(क) तुम्हें तो हमारे यहाँ आने की आन है। (ख) उनके घर में हरी चूड़ियों की आन है फिर हम यह भी कहते हैं—'उसे न जाने क्या आन पड़ गयी है कि वह किसी तरह मनाये नहीं मानता। ऐसे अवसरों पर इसका आशय होता है—अपनी मर्यादा आदि की रक्षा के विचार से किया जानेवाला ऐसा दृढ़ निश्चय या संकल्प जो जिद या हठ के रूप में परिणत हो गया हो। और जब हम कहते हैं—'तुम तो बात-बात में अपनी आन ही दिखाते रहते हो', तो आशय होता है—अपनी मर्यादा, महत्त्व आदि की उत्कट भावना के कारण उत्पन्न होनेवाला मिथ्या अभिमान अर्थात् अकड़ या ऐंठ। मेरी समझ में प्रस्तुत प्रसंग में इसके आर्थी विकास का ध्यान रखते हुए शब्द-कोशों में इसके अर्थों का वर्गीकरण और विवेचन बहुत कुछ इसी रूप में होना चाहिए।

अब इस शब्द के दूसरे आर्थी क्षेत्र में आएँ। हम कहते हैं—उसने ऐसी आन से ठुमरी गायी कि सब लोग वाह वाह करने लगे, अथवा उसकी हर आन बहुत भली मालूम देती है। ऐसे अवसरों पर इसका अर्थ होता है—किसी काम या बात

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का ऐसा ढंग, प्रकार या स्वरूप जो अनोखा या निराला होने के सिवा आकर्षक तथा हृदयग्राही भी हो, अर्थात् लुभावनी अंग-भंगी या मनोहर हाव-भाव। यहाँ भी यह है तो उसी संस्कृत 'आणि' से व्युत्पन्न, परन्तु इसका सम्बन्ध उसके 'प्रतिष्ठा' या 'मर्यादा' वाले अर्थ से नहीं है बल्कि मर्मस्थल या उसे स्पर्श करनेवाले तत्त्व से है।

फिर 'आन' का एक और अर्थ होता है—बहुत ही थोड़ा समय, क्षण या पल। इस अर्थ में यह मूलतः अरबी का शब्द माना जाता है परन्तु इसका सम्बन्ध संस्कृत के उस 'आनः' शब्द से भी माना जा सकता है जिसका पहला अर्थ होता है–उतना समय जितना एक बार सांस लेने में लगता है। जब हम कहते हैं—'आन की आन में ही वहाँ का सारा नक्शा बदल गया', तब इसका प्रयोग इसी अर्थ या आशय से सम्बद्ध होता है। इसी से और आगे बढ़कर यह साधारण काल या समय का भी वाचक हो जाता है, यथा—मिलि के बिछुरन मरन कि आना। —जायसी।

पूरबी हिन्दी में यह शब्द विशेषण रूप में 'अपर' या 'दूसरा' के अर्थ में भी प्रचलित है और वहाँ यह संस्कृत 'अन्य' से बना है। बोलचाल में पूरबी हिन्दी में इसका प्रयोग कुछ इस प्रकार होता है; जैसे—तुम तो इसी तरह आन का आन समझ लेते हो। आशय होता है—अभिप्राय होता तो कुछ और है पर तुम समझ लेते हो दूसरा ही कुछ।

कुछ क्रियाओं और विशेषणों के अन्त में यह (आन) प्रत्यय के रूप में भी लगता है और इसके संयोग से प्रायः भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे—उठना से उठान, मिलना से मिलान, ऊँचा से ऊँचान, चौड़ान आदि। इस प्रत्ययवाले रूप और अर्थ की चर्चा अभी तक किसी कोश में नहीं हुई है पर व्याकरणों में अवश्य है। मेरी समझ में प्रत्ययों की चर्चा भी कोशों में रहना बहुत आवश्यक है और इसी लिए मैंने इसे मानक कोश में भी और यहाँ भी स्थान दिया है।

इस प्रत्ययवाले रूप के संबंध में ध्यान रखने की एक और बात यह भी है कि इस प्रत्यय से युक्त कुछ शब्द तो पुंलिंग के रूप में प्रचलित मिलते हैं और कुछ शब्द स्त्रीलिंग के रूप में। भाषा-तत्त्वज्ञों और वैयाकरणों के लिए यह विषय विशेष रूप से विचारणीय है। मैं तो इस पर विचार करूँगा ही; यदि अन्य सज्जनों के ध्यान में इसके कुछ कारण आवें तो वे मुझे सूचित करने की कृपा करें।

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'उच्चांत' और 'कीर्तिमान

अँगरेजी का एक बहुत प्रलित और प्रचसिद्ध शब्द हैं—Record जो कई क्षेत्रों में और कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। भारत सरकार की शब्दावली में इसके लिए पहले और मुख्य अर्थ के लिए 'अभिलेख' शब्द दिया है जो प्रायः सर्वमान्य है और जिसके संबंध में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। पर इसके अर्थों का एक दूसरा क्षेत्र भी है जिसमें कोई सबसे अच्छा काम कर दिखलाने अथवा किसी कार्य का सबसे ऊँचा मान स्थिर करने के भाव आते हैं। हिंदी-भाषी क्षेत्रों में रेडियो पर इसके लिए प्रायः कीर्तिमान शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु यह शब्द एक दृष्टि से उपयुक्त जान पड़ने पर भी दूसरी दृष्टि से अनुपयुक्त जान पड़ता है। यदि किसी ने कोई ऐसा अच्छा या बड़ा काम कर दिखलाया हो जिससे उसे कीर्ति या यश प्राप्त होता हो तो उसके संबंध में यह कहा जा सकता है कि उसने उस क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है, परन्तु अँगरेजी में Record शब्द का प्रयोग कुछ ऐसे क्षेत्रों में भी होता है जिनमें कीर्ति या यश का कोई प्रश्न ही नहीं होता। उदाहरणार्थ किसी चीज का मूल्य भी किसी अवस्था में किसी विशिष्ट ऊँचाई तक पहुँच सकता है अथवा किसी स्थान पर इतना पानी बरस सकता या बरफ पड़ सकता है जितना पहले न बरसा हो या न पड़ा हो। अँगरेजी में तो उस स्थिति में Record का प्रयोग होता ही है पर हिंदी में यह नहीं कह सकते कि वहाँ वर्षा या हिमपात का कीर्तिमान स्थापित हुआ है क्योंकि यहाँ कीर्ति अथवा यश का कोई प्रश्न नहीं है। यही बात गरमी, सरदी आदि का आधिक्य सूचित करने के सम्बन्ध में भी है।

रेडियो के मराठी प्रसारणों के लिए इसी Record के लिए 'उच्चांत' शब्द का प्रयोग होता है, जो संस्कृत उच्च + अंत के योग से बना है। ऊपर 'कीर्तिमान' के संबंध में हमने जो आपत्ति की है वह आपत्ति तो 'उच्चांत' के सम्बन्ध में नहीं हो सकती परन्तु एक दूसरी दृष्टि से नई आपत्ति अवश्य हो सकती है। वह यह कि जो स्थिति सूचित करने के लिए इसका प्रयोग किया जायगा वह वस्तुतः उसके अंत या पराकाष्ठा तक पहुँची हुई नहीं होती। हो सकता है कि आगे चलकर उस स्थिति का उल्लंघन करनेवाली और उससे कहीं आगे बढ़ी हुई दूसरी नई स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। अतः ऐसे प्रसंगों में यह कहना कुछ अधिक संगत नहीं होगा कि पहले इसका उच्चांत अमुक था और अब अमुक है। हमारी समझ में यदि 'कीर्तिमान' और 'उच्चांत' दोनों के स्थान पर 'उच्चमान' शब्द रखा जाय तो वह अधिक भाव-व्यंजक भी होगा और अधिक व्यापक भी। इसी लिए मानक हिंदी कोश के परिशिष्ट में मैंने Record शब्द के लिए 'उच्चमान' ही को स्थान दिया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'ऊपर' और 'पर'

'ऊपर' और 'पर' दोनों हिंदी के सम्बन्ध-सूचक अव्यय हैं जो कुछ अवस्थाओं में तो एक दूसरे के पर्याय रूप में ही चलते हैं, और कुछ अवस्थाओं में जिनके अर्थ या आशय में बहुत कुछ अन्तर भी होता है।

ऊपर (सं० उपरि) सम्बन्धसूचक अव्यय होने पर भी प्राय: क्रिया-विशेषण की तरह और कभी-कभी विशेषण की तरह (और फलत: संज्ञा की तरह) भी प्रयुक्त होता है। यों तो यह 'तले' या 'नीचे' का विपर्याय है और किसी तल, विन्दु या विस्तार की तुलना में ऊँचाईवाली दिशा या विस्तार की ओर संकेत करता है और इसका अर्थ होता है—आकाश या ऊर्ध्व की ओर; जैसे—नीचे धरती और ऊपर आकाश है। पर विस्तारित अर्थों में यह और भी कई प्रकार के आशय या भाव प्रकट करता है। जैसे—

१—ऊँचाई पर या ऊँचे स्थान पर। जैसे—अब तो वे ऊपर चले गये हैं।

२—किसी विस्तार के पूरे तल पर। जैसे—वह कमीज के ऊपर कोट पहनता है।

३—आधार या सहारे पर। जैसे—मेज के नीचे की किताबें भी उठाकर उसके ऊपर रख दो।

४—बहुत ही पास के स्थान में या सटा हुआ। जैसे—उसका नया मकान गंगा के ठीक ऊपर बना है।

५—किसी प्रकार के क्रम, कोटि, वर्ग या श्रेणी के विचार से आगे बढ़ा हुआ। जैसे—वह ऊपर के दरजे में चला गया है।

६—किसी क्रम के विचार से पहले आया हुआ। जैसे—ऊपर की सब रकमों का जोड़ लगा दो।

७—पद, मर्यादा आदि के विचार से आधिकारिक, उच्च या श्रेष्ठ स्थिति में। जैसे—ऊपर की अदालत, ऊपर के हाकिम आदि।

८—किसी प्रकार के कार्य के निर्वाह या भार-वहन के विचार से, उत्तरदायित्व के रूप में; जैसे—तुम तो सभी काम हमारे ऊपर लादते चलते हो।

९—उपयोगिता, गुण, विशेषता आदि के विचार से किसी की तुलना में आगे बढ़ा हुआ या श्रेष्ठ। जैसे—आपकी सम्मति सबके ऊपर है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Gurukula Kangri University, Haridwar 185478

१०—जिसके आगे सभी दबे रहें या हीन ठहर। जैसे--तुम तो सदा अपनी ही बात ऊपर रखते हो।

११—किसी अंकित, नियत या निर्धारित मात्रा, मान, संख्या आदि से अधिक या ज्यादा। जैसे—(क) यह महीने भर से ऊपर की बात है। (ख) इसमें सौ रुपये से ऊपर खर्च होंगे।

१२—नियत, नियमित आदि के अतिरिक्त या उससे भिन्न। जैसे—उन्हें ऊपर की आमदनी भी हो जाती है।

१३—अन्दर या भीतर की तुलना में, प्रत्यक्ष, बाहर या सामने। जैसे—इस दवा से अन्दर का बुखार ऊपर आ जायगा।

इस अव्यय की पुनरुक्ति से जो 'ऊपर-ऊपर' पद बनता है, उसके भी कुछ विशिष्ट अर्थ होते हैं जो उक्त सभी अर्थों से प्रायः बहुत कुछ भिन्न होते हैं। यथा—

१—किसी क्षेत्र से अलग या बाहर रहकर। जैसे—वे ऊपर-ऊपर आये और चले गये, हमसे मिले तक नहीं।

२—ऐसे रूप में कि किसी को पता न लगने पाये, चुपचाप या चोरी से। जैसे—उसने ऊपर-ऊपर सारी कार्रवाई कर ली और किसी को पता भी न चलने दिया।

इससे 'ऊपर-ऊपर से' पद भी बनता है जिसका अर्थ होता है—बिना गहराई में या तह तक पहुँचे, अथवा बिना गम्भीर विचार किये। जैसे—ऊपर-ऊपर से तो यही जान पड़ता है कि उसका कोई दोष नहीं है। इसके सिवा इससे एक और पद बनता है--'ऊपर से' जिसका एक अर्थ तो वही होता है जो 'ऊपर-ऊपर से' का होता है। इसके सिवा एक और अर्थ भी होता है—केवल औपचारिक रूप से या देखने-दिखाने भर को। जैसे—ऊपर से तो वे बहुत मिलनसार जान पड़ते हैं, अन्दर की बात राम जाने।

'पर' भी इसी 'ऊपर' का 'ऊ' लुप्त होने से बना है। परन्तु 'पर' का प्रयोग सदा अव्यय या विभक्ति के रूप में ही होता है, 'ऊपर' की तरह क्रियाविशेषण या विशेषण के रूप में नहीं होता। कुछ अवस्थाओं में तो इसका प्रयोग भी 'ऊपर' की तरह ही होता है। जैसे--कमीज पर कोट भी पहन लो, पुस्तकें मेज पर रख दो। हम पर इतना भार मत रखो, तालाब पर एक मंदिर भी है आदि। पर कुछ अवस्थाओं में 'पर' के कुछ अतिरिक्त आशय या भाव भी होते हैं।

व्याकरण की दृष्टि से 'पर' सप्तमी या अधिकरण कारक का चिह्न है। जैसे—(क) जमीन पर मत बैठो। (ख) वह घर पर नहीं है। परन्तु अव्यय के रूप में इसके कुछ ऐसे अर्थ या आशय भी होते हैं जो 'ऊपर' के नहीं होते। यथा--

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१--किसी कार्य या घटना के तुरन्त उपरांत, पश्चात्, पीछे या बाद। जैसे--इसपर मैं और क्या कहता।

२--किसी काम या बात को आधार बना या मान कर। जैसे--इसी बात पर तो ये नाराज होकर चले गये।

३--किसी नियत धन या रकम के बदले में, अथवा किसी पदार्थ या वस्तु के बदले में; जैसे--(क) उन्होंने किराये पर शहर में एक मकान ले लिया है। (ख) उन्होंने सौ रुपये पर अपनी घड़ी रेहन रख दी है। (ग) अब इनके स्थान पर नये अधिकारी आ गये हैं।

४--किसी अवसर, व्यक्ति आदि के निमित्त। जैसे--(क) व्याह पर हजारों रुपये व्यर्थ उड़ गये। (ख) इस लड़के पर २०) महीना खर्च पड़ता है।

ऐसे अवसरों पर सदा 'पर' का ही प्रयोग ठीक होता है, 'ऊपर' का नहीं।

'ऊपर' और 'पर' के प्रयोगों के संबंध में विचार करने पर पता चलता है कि कुछ अवस्थाओं में इनमें बहुत सूक्ष्म अन्तर भी होते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में 'पर' में यह भाव होता है--ऐसे रूप में कि एक चीज के ऊपरी तल के साथ दूसरी चीज का नीचे वाला तल सटा रहे। जैसे--पुस्तक मेज पर रखी है। परन्तु 'ऊपर' में दोनों चीजों के तलों का सटा रहना न तो अनिवार्य या आवश्यक ही है और न प्रधान ही। 'ऊपर' में मुख्य भाव उत्सेध या ऊँचाई पर आश्रित या स्थित रहने का है। 'बन्दर पेड़ पर बैठा है' और 'बंदर उछल कर पेड़ के ऊपर जा पहुँचा' सरीखे प्रयोगों में ऊपर बतलाया हुआ अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण लीजिये--

१--टोपी सिर 'पर' पहनी जाती है और पगड़ी उस (टोपी) के 'ऊपर' बाँधी जाती है।

२--रेल की पटरी या लाइन तो पुल 'पर' बिछी रहती है, परन्तु दोतल्ले पुलों में (जैसे-राजघाट वाले पुल में) पुल के 'ऊपर' (अर्थात् पटरी वाले विस्तार के ऊपरी भाग में या और अधिक ऊँचाई पर) वह सड़क होती है जिस पर पैदल यात्री, बैल-गाड़ियाँ, मोटरें आदि चलती हैं।

३--नावें पानी 'पर' चलती या तैरती हैं, परंतु मछलियाँ कभी-कभी उछल कर पानी के 'ऊपर' भी आ जाती हैं।

इसके सिवा एक और बात है। ऐसी अवस्थाओं में जहाँ अन्दर की अपेक्षा, तुलना या विपरीतता का प्रसंग होता है वहाँ 'पर' के स्थान पर भी 'ऊपर' का ही प्रयोग होता है। जैसे--(क) तुम इतना भी नहीं जानते कि गाड़ी पुल के 'ऊपर' चलती है, नीचे नहीं चलती! (ख) साधारण नावें या जहाज तो पानी के 'ऊपर' ही चलते हैं, परन्तु पनडुब्बी नावें पानी के ऊपर भी चलती हैं और नीचे (या अंदर) भी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और

हिन्दी का एक बहुत ही छोटा, परम प्रचलित और बिलकुल साधारण शब्द है--और। कोशकारों और वैयाकरणों को छोड़कर कदाचित् ही कभी किसी हिन्दी-भाषी ने इसके अर्थों, आशयों तथा प्रयोगों पर विचार करने की कोई आवश्यकता समझी हो। आइये देखें कि इस छोटे से शब्द में कितनी अधिक आर्थी और व्यंजनात्मक शक्तियाँ निहित हैं।

पण्डित कामताप्रसाद गुरु ने अपने हिन्दी-व्याकरण में इसे समुच्चयबोधक अव्यय कहा है और इसके दो-तीन साधारण प्रयोग बतलाये हैं। हिन्दी शब्द-सागर में इसे संयोजक अव्यय कहा है और उदाहरण-स्वरूप यह प्रयोग बतलाया है--घोड़े और गदहे चर रहे हैं, आदि। उक्त कोश में इसके विशेषण रूप के अन्तर्गत अर्थ दिये हैं--

१. अन्य, दूसरा और २. अधिक, ज्यादा।

प्राय: आठ-दस वर्ष पूर्व मानक-कोश के सम्पादन के प्रारम्भिक काल में मैंने इसके सम्बन्ध में लिखा था कि इसका प्रयोग क्रियाविशेषण और विशेषण रूप में भी होता है। और क्रिया-विशेषण रूप का स्वतन्त्र विवरण देते हुए उदाहरण दिये थे--और चिल्लाओ; और मारो; और रोओ।

परन्तु इधर हाल में इस शब्द के कई ऐसे नये प्रयोग मेरे देखने में आये जिनके कारण मुझे अपने समस्त विवेचन पर फिर से तथा अधिक गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, और सारा विवेचन नये साँचे में ढालना पड़ा। इस लेख में उस नये विवेचन के आधार पर ही कुछ बातें लिखी जा रही हैं।

पदों, शब्दों, वाक्यों, वाक्यांशों आदि को जोड़नेवाला यह संयोजक अव्यय तो है ही पर कुछ अवस्थाओं में इसके प्रयोगों में से या तो वह संयोजक-तत्त्व बिलकुल निकल ही जाता है या बहुत दूर जा पड़ता है। हम कहते हैं--काम बिगाड़ते चलो और झिड़कियाँ सुनते चलो; अथवा खूब दूध पीओ और तन्दुरुस्त रहो। ऐसे अवसरों पर यह पहले कही हुई बात के परिणाम या फल का सूचक हो जाता है। झिड़कियाँ काम बिगाड़ने के फलस्वरूप सुननी पड़ती हैं; और तन्दुरुस्ती दूध पीने के फलस्वरूप आती है। फिर हम यह भी कहते हैं--मैं, और चुपचाप बैठा रहूँ, अथवा, वह, और आपका सामना करे। ऐसे अवसरों पर यह किसी प्रकार की विपरीतता, विरोध अथवा विलक्षणता का सूचक होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह तो हुई ऐसे प्रयोगों की बात जिनमें इसका प्रयोग वाक्यों के बीच में होता है। पर कुछ ऐसे प्रयोग भी हैं जिनमें यह वाक्यों के आरम्भ में आता है। जैसे—और क्या तुम उसे हाथी-घोड़ा दे देते। अथवा और क्या मैं उसकी खुशामद करने बैठता, ऐसे अवसरों पर इसमें संयोजक-तत्त्व तो अवश्य वर्तमान रहता है, पर उसका सम्बन्ध कुछ दूरान्वयवाले तत्त्व से युक्त होता है। अर्थात् यह किसी ऐसी बात या व्यापार की ओर संकेत करता है जो पहले हो चुका होता है; और इसका अर्थ या आशय होता है—जो कुछ किया जा चुका है अथवा हो चुका है उसके अतिरिक्त या उससे अधिक। फिर हम यह भी कहते हैं—और अनजाने आदमी को नौकर रखो; अथवा और पढ़ी-लिखी औरत से ब्याह करो। ऐसे वाक्यों का प्रयोग तभी होता है जब कोई किसी अनजाने आदमी को नौकर रखने का अथवा किसी पढ़ी-लिखी स्त्री से विवाह करने का कोई दुष्परिणाम भोग चुका होता है। ऐसे अवसरों पर यह 'और' इस दुष्परिणाम की ओर व्यंग्यात्मक संकेत भी करता है, उस पर कटाक्ष भी करता है, और एक प्रकार से भविष्य के लिए सचेत या सावधान भी करता है। ऐसे प्रयोगों में उसका यह दूरान्वयी सम्बन्ध इतनी अधिक दूर जा पड़ता है कि वह लुप्तप्राय-सा हो जाता है। आशय यही होता है कि जो कुछ तुमने किया, वह तो किया ही; पर आगे कभी ऐसी भूल मत करना।

विशेषण-रूप में इसका एक अर्थ अन्य या दूसरा तो है ही, जैसे—इस पर कोई और रंग होता तो अच्छा होता। एक और अर्थ होता है—प्रस्तुत से अधिक या जितना हो उससे ज्यादा। जैसे—अगर कुछ और रुपये हों तो काम मजे में चल जाय। फिर एक तीसरा अर्थ भी होता है—गैर, पराया या बेगाना। जैसे—और कोई इस झगड़े में क्यों पड़ने लगा?

क्रिया-विशेषण-रूप में भी इसका प्रयोग होता है; जैसे—जरा और जल्दी-जल्दी चलो, जिसका आशय होता है—चाल ज्यादा तेज करो। कुछ अवस्थाओं में इसका प्रयोग विशुद्ध सर्वनाम के रूप में भी होता है; जैसे—तुम औरों की बात छोड़ो, अपना विचार बतलाओ। अथवा, यह छाता मेरा नहीं, किसी और का है।

हो सकता है कि कुछ और प्रसंगों में कुछ भिन्न अर्थों में भी इसका प्रयोग होता हो, पर वे अभी तक मेरे ध्यान में नहीं आये हैं। यदि कोई विचारशील सज्जन इस सम्बन्ध में कुछ और सुझाव देने की कृपा करेंगे तो मैं उनका विशेष रूप से अनुगृहीत होऊँगा।

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्या

'क्या' हिन्दी के उन बहुत ही छोटे और सामान्य शब्दों में है, जिनका प्रयोग सभी लोग नित्य दिन में पचीसों-पचासों बार करते हैं। इसके साथ अनेक प्रयोग भी लगे हैं, जैसे--हम तुम्हें क्या समझते हैं, तुम उनके सामने क्या चीज हो, तुम क्या खाकर उनसे लड़ोगे, हम समझते हैं कि तुम्हारे मन में क्या है, क्या बात है, हमें क्या, हमारा क्या, क्या से क्या हो गया, आदि-आदि। इस प्रकार के बहुत से प्रयोग और उनके अर्थ हिन्दी शब्द-सागर में आये हैं। परन्तु इधर मानक हिन्दी कोश का सम्पादन करने के समय मुझे 'क्या' के कई नये प्रयोग और अर्थ मिले हैं, जिनका अब तक हिन्दी के किसी कोश में समावेश नहीं हुआ है। शब्द-सागर में भी जो प्रयोग आये हैं, उनका वर्गीकरण भी उतना ठीक नहीं है, जितना होना चाहिए, और उनके अर्थों या व्याख्याओं में भी बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। इसी दृष्टि तथा नये सिरे से विवेचन करने पर मुझे इसके सम्बन्ध में बहुत-सी नयी बातें मिली हैं, जिनकी जानकारी भाषा-प्रेमियों के लिए मनोरंजक हो सकती है। यही समझ कर मैं ये पंक्तियाँ लिखने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

'क्या' के सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि पंडित कामताप्रसाद गुरु ने अपने हिन्दी व्याकरण में लिखा है कि इसकी कारक-रचना नहीं होती, और कदाचित् इसी आधार पर शब्द-सागर में लिखा है कि इसके साथ विभक्ति नहीं लगती। पर शब्द-सागर में ही 'क्या का क्या हो जाना' अथवा 'क्या से क्या हो जाना', मुहावरा आया है जिसमें 'क्या' के आगे 'की' विभक्ति भी दिखायी गयी है और 'से' विभक्ति भी। वास्तव में बात यह है कि 'क्या' सर्वनाम तो है ही, विशेषण भी है। और जब विशेषण का प्रयोग संज्ञा के रूप में अथवा संज्ञा के स्थान पर होता है, तब उसमें विभक्ति लगती ही है, जैसे--बड़े से बड़ा, सबके सब आदि प्रयोगों में देखने में आता है। इसी लिए 'क्या' भी जब संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है, तब उसमें विभक्ति लगती है। 'क्या से क्या हो गया' में दोनों 'क्या' कुछ विशिष्ट स्थितियों के वाचक हैं। 'क्या से क्या हो गया' का अर्थ या आशय होता है--पहले जो स्थिति थी, वह बदल कर बिलकुल भिन्न या विपरीत स्थिति हो गयी, अर्थात् एक रूप के स्थान पर दूसरा रूप हो गया। यहाँ 'क्या' स्थिति या रूप का वाचक है, अतः उसके साथ विभक्ति लगी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याकरण की दृष्टि से 'क्या' मूलतः प्रश्न-वाचक सर्वनाम है, पर यह विशेषण की तरह प्रयुक्त होता है, क्रिया-विशेषण की तरह भी और अव्यय की तरह भी। तुम क्या खाओगे ? वहाँ क्या हुआ ? तुम्हें क्या मिला ? क्या खरच लगा ? सरीखे प्रयोगों में यह सर्वनाम रहता है। 'वाह !' क्या बात कही है ! तुम्हारा वहाँ क्या हाल हो गया। क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरबा ! सरीखे प्रयोगों में 'क्या' विशेषण तो हो ही गया है, उसका प्राश्निक रूप भी लुप्त हो गया है, और वह आश्चर्य, तुच्छता आदि का सूचक हो गया है। हमें क्या ? तुम्हारा क्या ? सरीखे प्रयोगों में भी क्या है तो विशेषण ही, पर ऐसे अवसरों पर इसके आगे संज्ञा इसलिए नहीं है कि आगे वाली संज्ञाओं का अध्याहार हो गया है। इसमें 'क्या' वस्तुतः 'हमें क्या आवश्यकता या गरज है' का संक्षिप्त रूप है। और 'तुम्हारा क्या' वस्तुतः 'तुम्हारा क्या जाता या बिगड़ता है।' का संक्षिप्त रूप है। तुम ये सब बातें क्या जानो ! क्या कहना है ! हम क्या जायँ ! सरीखे प्रयोगों में भी वही 'क्या' और आगे बढ़कर क्रिया विशेषण बन जाता है। और जब हम कहते हैं—क्या हम भी तुम्हारे साथ चले ? तो यहाँ 'क्या' अव्यय हो जाता है।

पर ये सब तो 'क्या' के सम्बन्ध की बिलकुल सामान्य बातें हुईं। अब 'क्या' के कुछ ऐसे अर्थ तथा प्रयोग लीजिये जो मुझे नये मिले हैं। कुछ अवस्थाओं में 'क्या' का आशय नहीं तो होता ही है; जैसे—अब वह क्या आयेगा। फिर भी ऐसे अवसरों पर इसका आशय यह नहीं होता कि वह निश्चित रूप से नहीं आयेगा। इसमें कुछ सन्देह या सम्भावना का तत्त्व भी मिला रहता है। जब हम कहते हैं—'अब वह क्या आयेगा', अथवा 'वह क्या बचेगा' तो इसका आशय यही होता है कि उसके आने या बचने की बहुत ही कम आशा या सम्भावना है। अर्थात् हो सकता है कि किसी अवस्था में वह आ या बच भी जाय। फिर हम यह भी कहते हैं—दो क्या बल्कि चार आदमी भेज दो। यहाँ भी 'क्या' का अर्थ प्रायः 'नहीं' के समान होता है, पर यह 'नहीं' भी कुछ अलग प्रकार का होता है। इसमें आपेक्षिक आवश्यकता, उपयोगिता आदि के तत्त्व निहित रहते हैं। और 'यह खाकी क्या बल्कि हरा है।' में 'क्या' आपेक्षिक अनिश्चय और वरीयता है। पर जब हम कहते हैं—'अन्धा इसे क्या देखेगा' अथवा 'मूर्ख इसे क्या समझेगा' तब हमारा आशय उक्त आशय से कुछ और आगे बढ़कर निश्चायक रूप धारण कर लेता है। जब हम कहते हैं—'तुम ये सब बातें क्या जानो' तब हमारा यह कथन उतना दृढ़ तथा निश्चायक नहीं होता, जितना 'अन्धे इसे क्या देखेगा', कहने में होता है। और अर्थ विवेचन की दृष्टि से यह अन्तर या भेद बहुत बड़ा और दृष्टि से विशेष महत्त्व का है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'क्या' के सम्बन्ध में बिलकुल नया और सबसे अधिक महत्त्व की बात मेरे देखने में आयी, वह यह है कि कुछ अवसरों पर इसका प्रयोग बिलकुल अकेले और बिना किसी दूसरे शब्द के योग के भी होता है और व्याकरण की दृष्टि से ऐसे अवसरों पर 'क्या' न तो सर्वनाम रह जाता है, न विशेषण, अव्यय आदि, बल्कि वह एक स्वतन्त्र वाक्य बन जाता है। इस सम्बन्ध में व्याकरण का सिद्धान्त स्पष्ट है। जब हम अपने मन का कोई भाव प्रकट करने के लिए कुछ शब्द अपने व्याकरण के नियम के अनुसार किसी विशिष्ट क्रम से लगाकर कहते या लिखते हैं, तब उन शब्दों का समूह वाक्य कहलाता है। पर पहली और सबसे बड़ी शर्त यह होती है कि हमारे मन का कोई पूरा भाव उससे प्रकट हो। यदि भाव या विचार पूरा न हो, तो शब्द समूह पद ही बनकर रह जाता है, वाक्य नहीं बनता। पर कुछ अवसरों पर हम एक ही शब्द से अपने मन का कोई एक पूरा भाव या विचार प्रकट करते हैं, और ऐसी अवस्था में हमारा वह एक शब्द ही तात्त्विक दृष्टि से वाक्य बन जाता है। हम से कोई पूछता है--आप कहाँ गये थे ? हम कहते हैं—घर। यहाँ यह अकेला 'घर' शब्द ही वाक्य बन गया है, क्योंकि इससे हम अपना यह भाव या विचार प्रकट करते हैं कि हम घर गये थे। 'क्या' का भी कुछ अवसरों पर वाक्य के रूप में ऐसा ही प्रयोग होता है। आप बात-चीत करने के समय किसी कारण से या कभी-कभी आप की कोई बात अथवा उसका कोई अंश या शब्द हम नहीं सुन पाते। उस समय हमें आप से पूछना पड़ता है--क्या ? अतः यह क्या भी यहाँ वाक्य हो गया ! आप कह सकते हैं कि इस तरह तो व्याकरण की दृष्टि से ऊपर का उदाहरण का 'घर' भी संज्ञा न रहकर वाक्य बन गया। पर नहीं 'क्या' का यह अन्तिम उदाहरण तो हमने केवल विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए दिया है। कुछ विशिष्ट अवसर ऐसे भी होते हैं, जिनमें 'क्या' में कुछ और भाव भी निहित रहते हैं, जिनका उल्लेख शब्द कोशों में होना आवश्यक है। अब अचानक कोई अनहोनी, अनिष्ट, अप्रत्याशित या विकट घटना घटित होने की बात हम सुनते हैं, और हम प्रायः अवाक् से हो जाते हैं, तब हमारे मुँह से ? केवल 'क्या' निकल कर रह जाता है। यदि कोई आकर कहे--'आज सड़क पर दिन दहाड़े गोलियाँ चल गयीं या डाका पड़ गया' तब प्रायः मुँह से उसी प्रकार 'क्या' निकल जाता है; जैसे अरे, हैं आदि शब्द निकलते हैं। ऐसे अवसरों पर यह विकट आघात-जन्य विस्मय-मात्र का सूचक होता है, और इसका आशय होता है कि ऐसा भी कभी हो सकता है ! एक और उदाहरण लीजिये। दो आदमियों में आपस में बहुत अधिक कहा-सुनी या लड़ाई-झगड़ा होता है। एक आदमी दूसरे से बिगड़कर कहता है--'मैं तुम्हारे घर में आग लगा दूँगा' या 'मैं तुम्हें जान से मार डालूँगा'। उस समय दूसरा आदमी क्रोध में भरकर कहता है--क्या ! अर्थ यह होता है कि क्या तुम मेरे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहते हुए ऐसा साहस कर सकते हो ? और आशय यही होता है कि मैं तुम्हें कदापि ऐसा न करने दूँगा। अथवा तुम कभी ऐसा न करने पाओगे।

सारांश यह कि बहुत से शब्दों का कुछ विशिष्ट अवसरों पर कुछ अलग अर्थ तथा कुछ स्वतन्त्र आशय होता है और आगे चलकर हमारे जो नये और अच्छे शब्द-कोश बनें, उनमें शब्दों पर ऐसी ही गंभीर दृष्टि से विचार करके उनके अर्थों, प्रयोग आदि का विवेचन रखना चाहिए। कोई शब्द छोटा या सामान्य समझकर उपेक्षा पूर्वक छोड़ नहीं दिया जाना चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन और प्राण

इस वर्ग के शब्द उन तत्वों और स्थितियों के वाचक हैं जिनके आधार पर और जिनमें जीव, जन्तु या प्राणी चलते-फिरते, खाते-पीते, जन्म लेते, बढ़ते और अपना परिवार या वर्ग बढ़ाते रहते हैं। इनमें मुख्य शब्द 'जीवन' प्रयोग और व्यवहार की दृष्टि से सबसे अधिक व्यापक है। मुख्य रूप से जीते रहने की अवस्था या भाव ही जीवन है। तात्त्विक दृष्टि से जीवन वह प्राकृतिक शक्ति है, जो प्राणियों, वृक्षों आदि को अंगों और उपांगों से युक्त करके अथवा उन्हें सेंद्रिय बनाकर सक्रिय और सचेष्ट रखती है और जिसके फलस्वरूप वे परिस्थितियों के अनुकूल रहकर और कुछ खा-पकाकर अपना अस्तित्व बनाये रखते और अपने वंश या वर्ग की वृद्धि करते रहते हैं। सारांश यह कि जीवित रूप में अस्तित्व बने रहने की अवस्था या भाव ही जीवन है। वैज्ञानिकों ने गतिशीलता, अनुभुति (या संवेदन), आत्म-पोषण, आत्म-वर्धन और प्रजनन यही पाँच इसके मुख्य लक्षण माने हैं। ये सब काम करने-करानेवाली शक्ति का अन्त या नाश ही मृत्यु है। इसी लिए जीवन का विपर्याय मृत्यु है।

परन्तु भाविक तथा लोक-व्यवहार की दृष्टि से जीवन का प्रयोग अनेक विवर्धित अर्थों में होता है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

१—शरीर में किसी विशिष्ट रूप या स्थिति में आत्मा के अस्तित्व की सारी अवधि या काल। जैसे—(क) पार्थिव या भौतिक जीवन। (ख) अमर या शाश्वत जीवन।

२—किसी आधार अथवा शरीर में उक्त शक्ति या प्राणों के बने रहने की अवधि, अवस्था या भाव। जैसे—पशु-पक्षियों, मनुष्यों या वृक्षों का जीवन।

३—मनुष्यों में उक्त अवधि का किसी विशिष्ट प्रकार, रूप या स्थिति का कोई अंग, अंश या पक्ष। जैसे—आध्यात्मिक, ऐकान्तिक या वैवाहिक जीवन।

४—उक्त अवधि या समय के किसी विशिष्ट प्रकार से या किसी विशिष्ट रूप में बिताये जाने या बीतने की दशा या स्थिति। जैसे—(क) दरिद्रता या पराधीनता का जीवन। (ख) ग्राम्य, नागरिक या सभ्य जीवन।

५—किसी विशिष्ट प्रकार के कर्तृत्व या क्रिया-कलाप के विचार से बिताई जानेवाली उक्त अवधि या उसका कोई अंश। जैसे—(क) आमोद-प्रमोद या भोग-विलास का जीवन। (ख) बढ़इयों, लोहारों या सैनिकों का जीवन।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह तो हुआ काल और दशा के विचार से जीवन का विवेचन। इसके सिवा स्वयं उस तत्त्व या शक्ति के विचार से भी इसके कुछ विशिष्ट अर्थ, आशय या भाव होते हैं। यथा—

१—वह (तत्त्व या व्यक्ति) जिससे किसी को कुछ करने की पूरी प्रेरणा, योग्यता या शक्ति प्राप्त होती है। जैसे—आप ही इस संस्था के जीवन हैं।

२—वह तत्त्व जिससे कोई चीज या बात यथेष्ट ऊर्जा, ओज, प्राणों आदि से युक्त जान पड़ती है। जैसे—(क) किसी कविता, चित्र या मूर्ति में दिखाई पड़नेवाला जीवन।

३—वह तत्त्व या बात जो किसी वस्तु या व्यक्ति का अस्तित्व बनाये रखने के लिए अनिवार्य या परम आवश्यक होती है। जैसे—जल (या वायु) ही सब प्राणियों का जीवन है।

४—उक्त के आधार पर कोई ऐसी परम प्रिय वस्तु या व्यक्ति जिसके बिना रह सकना बहुत ही कठिन या दुष्कर हो। जैसे—(क) हमारे आराध्य देव ही हमारे जीवन हैं। (ख) साहित्य-सेवा ही उसका जीवन है।

'प्राण' (सं०) का पहला अर्थ है—साँस लेने में नथनों के द्वारा आने-जाने वाली वायु। मुख्य रूप से यह हमारी जीवन-शक्ति का ही वाचक है। हमारे शास्त्रों में इसके दस भेद या रूप कहे हैं, यथा—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। शरीर में इनके निवास के भिन्न-भिन्न स्थान माने गये हैं और इनके कुछ विशिष्ट शारीरिक व्यापार स्थिर किये गये हैं। इनमें से पहलेवाले ५ प्रधान कहे गये हैं, और उनके समाहार को पंच प्राण कहते हैं। इसी आधार पर संस्कृत व्याकरण में प्राणम् के बहुवचनात्मक प्रयोग का विधान है। पुराने हिन्दी लेखक प्रायः बहुवचन में ही इसका प्रयोग करते थे। जैसे—उनके प्राण निकल गये। पर आज-कल के बहुतेरे लेखक इस तत्त्व से अनभिज्ञ होने के कारण प्रायः एक वचन में ही इसका प्रयोग करने लगे हैं। प्राण ही जीवन का मुख्य आधार है, इसी लिए जीवों को प्राणी कहते हैं। प्राणों का अन्त ही मृत्यु है। आर्थी क्षेत्र में कुछ अवस्थाओं में प्राण का प्रयोग भी जीवन तत्त्ववाले अर्थों में जीवन की तरह ही होता है; जैसे—वही इस संस्था के प्राण (यह जीवन) हैं। हाँ, जीवन के क्रिया-कलापवाले तत्व का प्राण में अभाव है। इसी लिए देवी-देवताओं की मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा तो की जाती है, पर जीवन प्रतिष्ठा नहीं की जाती या नहीं की जा सकती। हम उन्हें जीवन तत्त्व से युक्त तो कर और मान सकते हैं, पर जीवन-क्रिया से युक्त कर या मान नहीं सकते परन्तु डूबे हुए, बेहोश या मृतप्राय आदमी को जल से निकालने पर उसमें जीवन का संचार करना भी कहा जाता है और प्राणों का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संचार करना भी क्योंकि ऐसे अवसरों पर जीवन का तत्त्व ही अभिप्रेत होता है, क्रियाकलाप का नहीं।

'जान' फारसी का शब्द होने पर भी मूलतः संस्कृत 'ज्ञान' से व्युत्पन्न है। अपने मूल अर्थ के विचार से जान और प्राण दोनों समानक ही हैं। परन्तु अपने परवर्ती और विवर्द्धित अर्थों में यह बल-बूते या शक्ति और मूल तत्त्व या सार भाग के लिए भी प्रयुक्त होता है। जैसे—(क) यह बैल हल में क्या चलेगा, इसमें जान तो है ही नहीं। और (ख) अब यह मकान बहुत पुराना हो गया है, इसकी दीवारों में जान नहीं रह गयी है। किसी चीज की उत्कृष्टता, उपयोगिता, सौन्दर्य आदि बढ़ानेवाला तत्व भी जान कहलाता है। जैसे—यही शब्द तो इस चरण (पद या शेर) की जान है। कुछ अवस्थाओं में यह कई ऐसे अर्थों से भी युक्त रहता है जो ऊपर जीवन के अन्तर्गत बतलाये गये हैं। जैसे—वही तो इस मजलिस की जान है। जीवन की ही तरह यह परम प्रिय पदार्थ या व्यक्ति के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त होता है। मुसलमानों में इसका प्रयोग बड़े या पूज्य व्यक्तियों के सम्बन्धवाचक शब्दों के साथ भी होता है, जैसे—अम्मा जान और भाई जान आदि। उर्दू कविताओं में यह प्रियतम या प्रियतमा के लिए बहुत अधिकता से प्रयुक्त होता है। इसके सिवा उर्दू वालों ने इसके योग से अनेक पद और मुहावरे भी बना लिये हैं। जैसे—जान जोखिम, जान का जंजाल, जान खोना, जान चुराना, जान हलकान करना आदि। ऐसे प्रयोगों में जान के स्थान पर जीवन या प्राण का प्रयोग नहीं हो सकता।

'जिन्दगी' फारसी 'जिन्दः' का भाववाचक रूप है और 'जिन्दः' का व्युत्पत्तिक सम्बन्ध संस्कृत जीवन्त (जीवित) से जान पड़ता है। कई बातों में यह बहुत कुछ जीवन का भी समानक है। ऊपर काल, क्रिया, दशा आदि के विचार से जीवन के जो विशिष्ट अर्थ और प्रयोग बतलाये गये हैं, बहुत कुछ वही और उसी प्रकार के अर्थ और प्रयोग जिन्दगी के भी होते हैं। जैसे—गरीबी या फकीरी की जिंदगी, ऐश-आराम की जिन्दगी आदि। हाँ जीवन-तत्त्व और जीवन-शक्तिवाले क्षेत्र में जीवन के जो अर्थ बतलाये गये हैं उन अर्थों में बहुधा ज्ञान का ही प्रयोग होता है, जिन्दगी का नहीं और इसके कुछ उदाहरण ऊपर जान के प्रसंग में दिये जा चुके हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

झेलना, सहना और भोगना

इस वर्ग की क्रियाएँ ऐसी स्थितियों की वाचक हैं जिनमें मनुष्य को कोई कठिन, कष्टप्रद या विकट प्रसंग आने पर जैसे-तैसे उनका सामना करते हुए आगे बढ़कर उनसे पार होना पड़ता है। 'झेलना' हमारे यहाँ का बोल-चाल का पुराना शब्द है जिसका प्रयोग मध्य युग के कवियों ने स्वच्छन्दतापूर्वक किया है। हिन्दी शब्द-सागर में इसे सं० क्ष्वेल (हिलाना-डुलाना) से व्युत्पन्न माना है पर हो सकता है कि यह सं० जल् से व्युत्पन्न हो जिसके अर्थ हैं--ढकना, घेरना, फँसाना आदि। क्ष्वेल के भी कई और अर्थ हैं। जैसे--कूदना, चलना, काँपना आदि। जो हो, झेलना का प्रयोग मुख्यत: ऐसी विकट परिस्थितियों के प्रसंग में होता है जिनमें मनुष्य के अध्यवसाय, धैर्य और साहस की परीक्षा होती है, और वह विपत्तियों, संकटों आदि की परवाह न करते हुए आगे बढ़ता चलता है। जैसे--(क) जंगलों और पहाड़ों के भीषण कष्ट झेलते हुए वे लोग महीनों बाद घर पहुँचे थे। (ख) विधवा माता ने बड़े-बड़े कष्ट झेल-कर उन्हें पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया था। बोल-चाल में घर-गृहस्थी की स्त्रियाँ इसका प्रयोग प्राय: 'पानी' के साथ करती हैं। जैसे--वह दिन भर पानी झेलती रहती है, अर्थात् ऐसा काम-धन्धा करती रहती है जिसमें हाथ-पैरों या शरीर के दूसरे अंगों में पानी लगता रहता है। आशय यही होता है कि शरीर में पानी लगने के दुष्परिणामों की वह कोई चिन्ता नहीं करती। उर्दू का एक शेर भी है--

निस्फ शब को यार बुलाये
अगर बरसात में।
झेलकर हम जायँ पानी
ता कमर बरसात में।

यहाँ भी कष्ट की परवाह न करने का भाव ही प्रधान है। परन्तु सूरदास ने पानी के प्रसंग में सुखद भाव के साथ भी झेलना का प्रयोग किया है। यथा--बाल केलि को बिसद परम सुख, सुख-समुद्र नृप झेलत। साधारणत: समुद्र झेलना सहज नहीं होता, इसी लिए सुख-समुद्र के साथ भी उक्त पद में झेलना का प्रयोग किया गया है।❀

❀ इसी झेलना से स्त्रियों की बोलचाल में 'झेली' शब्द बना है। 'झेली' एक विशेष प्रकार से प्रसविणी स्त्री को झटका देने या झकझोरने की क्रिया है, जिससे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने विकसित और विवर्धित अर्थ में झेलना का प्रयोग ऐसी बात ग्राह्य या मान्य करने के प्रसंग में भी होता है जो उचित या ठीक होने पर भी किसी कारण से अभीष्ट या प्रिय न हो। यथा—पायँनि आनि परे तो परे रहे, केती करी मनुहार न झेली।—मतिराम। कभी-कभी कोई चीज पचा जाने या कोई बात उपेक्षापूर्वक टालने के प्रसंग में भी इसका प्रयोग होता है। जैसे—यह रकम (या बात) भी वह झेल ही गये।

सहना (सं० सहन) का प्रयोग प्रायः अनुचित, अप्रिय और विशेषतः कष्टप्रद या हानिकारक बातों के सम्बन्ध में होता है। इसका मुख्य आधार मनुष्य की शक्ति या सामर्थ्य पर होता है, इसी लिए लोक में सहन-शक्ति पद प्रचलित है इसी लिए कहा जाता है—(क) सौ रुपये का घाटा तो हम खुशी से सह लेंगे। कुछ अवसरों पर सहना का प्रयोग इस भाव का भी सूचक होता है कि मनुष्य व्यर्थ का झंझट नहीं बढ़ाना चाहता, मन की शान्ति नष्ट नहीं होने देना चाहता, अथवा जान-बूझकर किसी बात की उपेक्षा करता है। जैसे—अभी तक तो मैं उनके व्यवहार चुपचाप सहता चलता था, पर अब मुझसे नहीं सहा जाता। आशय यही होता है कि मैं जैसे-तैसे दुर्व्यवहारों की उपेक्षा करता था, पर अब मुझमें और अधिक उपेक्षा करने की शक्ति नहीं रह गयी है।

भोगना (सं० भोग) का प्रयोग साधारण अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के प्रसंगों में होता है। हम सुख भी भोगते हैं और दुःख भी भोगते हैं। वस्तुतः किसी प्रकार का भोग करना ही भोगना है। परन्तु प्रस्तुत अर्थात् कष्टप्रद या दुःखप्रद बातों के प्रसंग में भोगना के मूल में मुख्य भाव यह रहता है कि आया हुआ कष्ट या दुःख दूर करने में असमर्थ हैं और इसी लिए हम चुपचाप उसके आगे सिर झुकाकर चले चलते हैं। इसी लिए कहा जाता है—जो कुछ हमारे भाग्य में बदा होगा, वह भोगना ही पड़ेगा। वह हमारे वश के बाहर की बात है। इस प्रकार भोगना में विवशता का भाव प्रधान है। यदि हम कष्ट झेलते हैं तो अपने अध्यवसाय तथा धैर्य की सहायता से, यदि कष्ट सहते हैं तो अपनी शक्ति के आधार पर और यदि दुःख भोगते हैं तो अपनी विवशता के कारण।

प्रसव जल्दी और अपेक्षया सहज में हो जाता है। फिर भी झटका या झकझोरा कुछ न कुछ कष्टप्रद तो होता ही है। नाजनीन का एक शेर है—

खूब झेली बी तेरे सदके गई।
अबके आसानी से बच्चा हो गया।।

इस 'झेली' में भी कष्ट का भाव ही प्रधान है, सुख का नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ना

'पड़ना' हिन्दी का एक बहुत ही छोटा और बिलकुल साधारण-सा शब्द है, जिसका प्रयोग प्राय: सभी हिंदी-भाषी नित्य पचासों-सैकड़ों बार करते हैं। पर कदाचित् ही कभी किसी ने यह जानने, समझने या सोचने का प्रयत्न किया हो कि इसके कितने प्रकार के अर्थ, आशय और प्रयोग होते हैं। इसके सम्बन्ध की कोई बात जानने के लिए शब्दकोश देखना तो हिंदी-भाषी व्यर्थ ही समझते होंगे। हिन्दी के अब तक के सर्वश्रेष्ठ शब्दकोश 'हिंदी-शब्द-सागर' में इसके १९ अर्थ दिये गये हैं। पर इधर मानक हिन्दी कोश (जो प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हो रहा है) का सम्पादन करते समय मुझे विशेष छानबीन करने पर और भी ऐसे अनेक प्रयोग मिले हैं, जिनके आधार पर इसकी अर्थ-संख्या २५ तक जा पहुंची है और सम्भव है कि अभी कुछ और नये अर्थ तथा प्रयोग मिल जायँ और इसकी अर्थ-संख्या कुछ और भी बढ़ जाय। ऐसे अर्थ-विशिष्ट प्रयोगों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं--

१--कान में दवा, तरकारी में नमक या पेट में भोजन पड़ना।
२--घूँसा, थप्पड़ या लात पड़ना।
३--छत पर पलंग, पलंग पर बिस्तर या दीवारों पर छत पड़ना।
४--गरमी या सरदी पड़ना।
५--ओले या पत्थर पड़ना।
६--आफत या बला पड़ना, डाका पड़ना।
७--बात या मौका पड़ना।
८--बीमार होकर बिस्तर पर पड़ना।
९--धर्मशाला या सराय में जा पड़ना या पड़े रहना।
१०--किसी बात में या किसी के बीच में पड़ना।
११--दूकान या मकान खाली पड़ना, चीजें व्यर्थ पड़ी रहना।
१२--गहना या जायदाद रेहन पड़ना।
१३--डेरा या पड़ाव पड़ना।
१४--रास्ते में पुल या मन्दिर पड़ना।
१५--घाव में मवाद या फल में कीड़े पड़ना।
१६--किसी काम या बात की गरज या जरूरत पड़ना।
१७--गरम या नरम पड़ना, कमजोर या मजबूत पड़ना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१८--चार कोस की दूरी पड़ना।

१९--खरच कम या ज्यादा पड़ना, माल महँगा या सस्ता पड़ना।

२०--माल का पड़ता या लागत पड़ना।

२१--काम में खरच या रोजगार में घाटा पड़ना।

२२--किसी को कल या चैन पड़ना।

२३--आमदनी में खरच का पूरा पड़ना।

२४--किसी के नाम रकम पड़ना।

२५--लड़के का अपने बाप (या माँ) पर पड़ना। प्रचार पड़ना

२६--कुछ जान पड़ना या दिखाई पड़ना। आदि आदि। गले पड़ना

हो सकता है कि और अधिक छान-बीन और सोच-विचार करने पर इसके कुछ और भी सूक्ष्म अर्थ, आशय, प्रयोग, भेद आदि मिल जायँ। मैंने तो इस शब्द पर पूरे ८ दिन लगाये हैं, पर इतना सब कुछ करने पर भी मुझे यही समझकर रुक जाना पड़ा कि अभी इस पर महीनों लगाये जा सकते हैं। पर प्रश्न तो यह है कि इतना समय कहाँ से आये और इसके लिए आवश्यक व्यय तथा साधन कौन जुटाये।

ऊपर 'पड़ना' के जो प्रयोग बतलाये गये हैं, वे एक प्रकार से बहुत ही साधारण और नित्य की बोलचाल में आने वाले हैं। पर इनके सिवा इसके विलक्षण प्रयोगों के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें भी हैं जो या तो व्याकरण के क्षेत्र में आती हैं या विशिष्ट विवेचन तथा शोध के क्षेत्र में पड़ती हैं।

'पड़ना' के मुख्य अर्थ वही दो हैं, जिनके दो उदाहरण ऊपर आरम्भ में दिये गये हैं। शेष अर्थ और प्रयोग किसी न किसी रूप में इन्हीं दोनों में परिवर्द्धित, विकसित या विकृत हुए हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से यह क्रिया हिन्दी की सकर्मक क्रिया 'डालना' का अकर्मक रूप है। जैसे--किसी चीज में कोई दूसरी चीज डालना और किसी चीज में कोई दूसरी चीज पड़ना, कहीं डेरा डालना और कहीं डेरा पड़ना, किसी के नाम कोई रकम डालना और किसी के नाम कोई रकम पड़ना आदि आदि अनेक अकर्मक क्रियाओं के साथ 'पड़ना' का प्रयोग संयोज्य क्रिया के रूप में भी होता है। कहीं तो यह किसी क्रिया का आकस्मिक आरम्भ सूचित करती है, जैसे--कुछ देख या सुनकर चौंक या हँस पड़ना, बिना सोचे-समझे घर से चल या निकल पड़ना और कहीं इससे किसी क्रिया या व्यापार का घटित, पूर्ण या समाप्त होना सूचित होता है। जैसे--कूद पड़ना, घूम पड़ना, चित पड़ना, फट पड़ना आदि। कुछ अवस्थाओं में यह क्रिया किसी प्रकार की बाध्यता या विवशता की भी सूचक होती है। जैसे--मुझे रोज उनके घर जाना (या जाकर बैठना) पड़ता है। परन्तु ऐसा मुख्यतः क्रियार्थक संज्ञाओं के प्रसंग में ही होता है। अवधारण-बोधक क्रियाओं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

पूर्वकालिक कृदन्त के साथ (आ पड़ना) और गड्ढे में आ पड़ा।
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के साथ लगकर यह बहुत कुछ 'जाना' या 'होना' की तरह का अर्थ देती है और उन सकर्मक क्रियाओं को अकर्मक क्रियाओं का-सा रूप दे देती है। जैसे——जान पड़ना, दिखाई पड़ना, समझ पड़ना आदि। कुछ अवस्थाओं में यह 'जाना' से कुछ भिन्न भाव भी सूचित करती है। जैसे——'वह कूद जायगा।' में तो बहुत कुछ योग्यता, शक्ति, सामर्थ्य आदि का भाव है, पर 'वह कूद पड़ेगा', में अधिकतर संभावना का भाव ही प्रधान है। कुछ संज्ञाओं के साथ लगकर यह साधारण 'आना' या 'होना' की तरह का भी अर्थ देती है। जैसे-खयाल पड़ना, याद पड़ना आदि। कभी-कभी इस क्रिया के योग से कुछ पदों में मुहावरे का तत्त्व भी आ लगता है। जैसे——(क) ऐसी समझ पर पत्थर पड़े। (ख) दौलत तो मानों उनके घर फटी पड़ती हैं। (ग) बहुत बोलने (या सरदी लगने) से गला पड़ (अर्थात् बैठ) जाता है। (घ) वह अकेला ही दो आदमियों पर भारी पड़ता है। (च) इस तरह हाथ-धोकर किसी के पीछे पड़ना ठीक नहीं है। (छ) राणा की सेना रातोरात शत्रुओं पर टूट पड़ी, आदि-आदि। कुछ अवस्थाओं में यह विशुद्ध शक्यता या संभावना की भी सूचक होती है। जैसे—बन पड़ा तो मैं भी किसी दिन वहाँ जाऊँगा। कभी-कभी यह किसी क्रिया की तुल्यता या समकक्षता भी प्रकट करती है। जैसे——(क) तुम तो आस-पास बैठे हुए लोगों पर गिरे पड़ते हो। (ख) वह खाने-पीने की चीजों पर गिरा पड़ता है, आदि आदि।

इन सब बातों का इतने विस्तार से विवेचन करने में मेरे दो हेतु हैं। एक तो यह कि भाषा के क्षेत्र में कभी किसी शब्द को छोटा या साधारण समझकर उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। हर शब्द में किसी न किसी प्रकार के थोड़े-बहुत गूढ़ तत्त्व या रहस्य होते हैं, और विचारशीलों को उन रहस्यों या तत्त्वों तक पहुँचने और उन्हें प्रकाश में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरा हेतु यह है कि जो हिन्दी अब तक राष्ट्रभाषा मानी जाती थी और अब राज-भाषा मान ली गयी है, उसके सभी मुख्य-मुख्य शब्दों का उसी प्रकार का विवेचन होना चाहिए और उनकी आर्थी सीमाएँ ठीक तरह से निरूपित और निश्चित होनी चाहिएँ। बिना ऐसा किये न तो हिन्दी राजभाषा बनी रह सकेगी और न प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न भाषाओं में उसकी गिनती हो सकेगी। परन्तु इसके लिए ऐसे होनहार हिन्दी-सेवियों की आवश्यकता है जो अपना सारा जीवन भाषा और शब्दों के अध्ययन तथा विवेचन में लगाने के लिए तैयार रहें। उन्हें दाम और नाम की ओर से अपना ध्यान हटाकर काम की ओर प्रवृत्त होना पड़ेगा। मैं अपने जीवन-व्यापी अनुभव से यह बात अच्छी तरह समझता हूँ कि अभी इस तरह के कामों का आदर करने और महत्त्व समझनेवाले लोग बहुत थोड़े—प्रायः नहीं के बराबर हैं। पर साथ ही मैं यह भी समझता हूँ कि हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल करने के लिए इस प्रकार के कामों की बहुत बड़ी आवश्यकता है। आज जो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग सब प्रकार के स्वार्थों का परित्याग करके ऐसे कामों में लगेंगे, भले ही वे अपने जीवन-काल में विशेष आदर, धन और सम्मान न प्राप्त कर सकें, फिर भी यह निश्चित है कि आनेवाली पीढ़ियाँ अपने-आपको सबसे अधिक उन्हीं का ऋणी मानेंगी, उन्हीं की कृतियाँ स्थायी होंगी और उन्हीं का नाम अमर होगा।

यहाँ प्रसंगवश मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ कि हिन्दी शब्द-सागर में जो काम हुआ है वह बहुत महत्त्वपूर्ण तथा विशाल होने पर भी अनेक दृष्टियों से अधूरा और अपर्याप्त है—उसमें बहुत से परिवर्तनों, परिवर्धनों और संशोधन की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस महती आवश्यकता की पूर्ति में मैं तो लगा ही हूँ, पर अब मेरे जीवन और जीवनी-शक्ति का कोई भरोसा नहीं रह गया है। इसी लिए मैं होनहार नवयुवकों को इस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आमन्त्रित करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि भाषा और शब्दों के प्रति लोगों में जो उदासीनता और उपेक्षा का भाव भरा पड़ा है, वह किसी प्रकार दूर हो और हमारे साहित्य का यह अंग पूर्ण रूप से पुष्ट तथा विकसित होकर हमारे देश और राजभाषा का मस्तक उन्नत करे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'पर्याप्त' और 'यथेष्ट'

कुछ दिन हुए, मुझे अपने एक परम आदरणीय और सुयोग्य मित्र का एक पत्र मिला था, जिसमें लिखा था—'इससे मुझे पर्याप्त चिन्ता हो गई है।' पढ़ते ही मुझे इसमें का 'पर्याप्त' शब्द कुछ खटका। मैं सोचने लगा कि इसमें खटक क्यों है और कहाँ से या कैसे आई। मेरा ध्यान इसी से मिलते-जुलते शब्द 'यथेष्ट' की ओर गया। मैं सोचने लगा कि क्या यहाँ 'पर्याय' की जगह 'यथेष्ट' का प्रयोग ठीक होगा! पर वह भी मुझे ठीक नहीं जान पड़ा। मैं दोनों की खटक का कारण ढूँढ़ने लगा। मेरे ध्यान में आया कि इस खटक का कारण इन शब्दों के मूल व्युत्पत्तिक अर्थों तथा मुख्य विवक्षाओं में होना चाहिए। इसी चिंतन के फलस्वरूप मेरे ध्यान में कुछ और बातें भी आईं।

'पर्याप्त' शब्द वस्तुतः परि + आप्त से बना है, जिसका शब्दार्थ है—जो अच्छी या पूरी तरह से प्राप्त हुआ हो। इसी लिए हम कहते हैं—भगवान ने उन्हें पर्याप्त बुद्धि और विद्या (अथवा सम्पत्ति) भी दी थी। यहाँ तक तो ठीक है पर आगे चलकर हिंदी में इस शब्द के साथ एक दूसरी विवक्षा लग गई, जिसके कारण ऊपर बतलाई हुई पहली विवक्षा गौण हो जाती है। हिंदी में 'पर्याप्त' का प्रयोग प्रायः ऐसी मात्रा या मान सूचित करने के लिए होता है जिससे हमारी आवश्यकता की अच्छी तरह पूर्ति हो सकती हो, और उस पूर्ति के उपरान्त भी जिसमें से कुछ बच रहने की सम्भावना हो। अर्थात् इसमें किसी वस्तु की अधिकतावाले भाव के साथ आवश्यकता या उपयोगितावाला तत्त्व भी आकर सम्मिलित हो जाता है। इसी लिए हम कहते हैं—(क) इस काम के लिए आपने जितना धन भेजा है, उतना पर्याप्त है। अथवा (ख) जाड़ा बिताने के लिए इतने गरम कपड़े पर्याप्त होंगे। संस्कृत और हिन्दी कोशों में इसका एक और तीसरा अर्थ 'बहुत अधिक' भी मिलता है। परन्तु यह तीसरा अर्थ ऐसा नहीं है जो हर जगह ठीक और पूरा काम दे सके। उदाहरणार्थ हम कभी यह नहीं कहते—वह पर्याप्त दुष्ट (या मूर्ख) है। कारण यही है कि 'पर्याप्त' में मुख्य विवक्षा आवश्यकता उपयोगिता, औचित्य आदि से सम्बद्ध है, और दुष्टता (या मूर्खता) ऐसी चीज या बात नहीं है जो आवश्यक, उपयोगी या उचित कही अथवा मानी जा सकती हो। अर्थ-बोध के सम्बन्ध में साधारण नियम यही है कि शब्द की जो विवक्षा प्रधान तथा प्रसिद्ध होती है, उसी की ओर पाठक या श्रोता का ध्यान पहले जाता है। अतः जब हमें 'पर्याप्त चिन्ता' सरीखे प्रयोग दिखाई देते हैं, तब हमें उनमें कुछ खटक जान पड़ती है। 'पर्याप्त'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्द सामने आते ही स्वभावतः हमारा ध्यान आवश्यकता, या उपयोगिता आदि वाली विवक्षा की ओर चला जाता है। और इसी लिए हमें 'चिन्ता' के साथ 'पर्याप्त' का प्रयोग खटकता है।

अब जरा 'यथेष्ट' के अर्थ का भी विचार कर लीजिए। 'यथेष्ट' का मूल रूप है—यथा + इष्ट, जिसका शब्दार्थ है—जितना या जैसा इष्ट हो, इसी लिए इसमें इष्टता-वाली विवक्षा प्रधान है। मुख्यतः 'यथेष्ट' का प्रयोग ऐसे ही प्रसंगों में होना चाहिए जो हमें इष्ट या वांछित हो। इसी लिए कहा जाता है—(क) उनके पास यथेष्ट धन था। अथवा (ख) वहाँ हमें यथेष्ट सुख मिला। इसी दृष्टि से यह कहना ठीक नहीं होगा—आज-कल वह यथेष्ट कष्ट (या विपत्ति) में है। कारण यही है कि कष्ट या विपत्ति कभी किसी को इष्ट नहीं होती। हम यह अवश्य कहते हैं—अपराधी को यथेष्ट दंड मिलना चाहिए। पर दंडवाली बात कष्टवाली बात से इसलिए बिलकुल भिन्न है कि अपराधी को दंड मिलना नीति और न्याय दोनों की दृष्टि से इष्ट होता है। साधारणतः विस्तृत रूप में 'यथेष्ट' का दूसरा या परवर्ती अर्थ होता है—बहुत अधिक। इसी लिए हम कहते हैं—आप मेरे साथ यथेष्ट अन्याय कर चुके। ऐसे अवसरों पर 'यथेष्ट' की दोनों विवक्षाएँ काम करती हैं। कहनेवाले के दोनों आशय हो सकते हैं। उसका एक आशय तो यह होगा कि आप मेरे साथ जितना अन्याय करना चाहते थे, वह सब कर चुके। पर साधारण बोलचाल की दृष्टि से दूसरा आशय यह भी हो सकता है कि आप मेरे साथ बहुत अधिक अन्याय कर चुके।

अर्थ-बोध के सम्बन्ध का पहला और साधारण नियम तो हम ऊपर बतला ही चुके हैं। उसका दूसरा नियम यह है कि जहाँ दो या अधिक विवक्षाएँ बहुत कुछ समान रूप से प्रचलित या प्रसिद्ध होती हैं, वहाँ या तो अर्थ ग्रहण में कठिनता होती हैं या खटक। ऐसी कठिनता या खटक ही जिज्ञासु को शब्द के मूल या व्युत्पत्तिक अर्थ की ओर प्रवृत्त करती है, और उस मूल स्रोत से जो तथ्य प्रधान या मुख्य रूप में प्राप्त होता है, उसी के आधार पर प्रस्तुत समस्या की मीमांसा की जाती है। इसी प्रकार के तात्त्विक विवेचन से पता चलता है कि 'पर्याप्त चिन्ता' और 'यथेष्ट मूर्खता' सरीखे प्रयोगों में क्यों खटक होती है। पर जब हम कहते हैं—'उनके पास जीवन-निर्वाह के लिए तो यथेष्ट धन था, परंतु वे दीन-दुखियों या सगे-संबंधियों की जितनी सहायता करना चाहते थे, उसके लिए वह धन पर्याप्त नहीं था।' तो इसमें कुछ भी खटक नहीं होती।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पैर

जैसा कि मैंने अपने पहले लेख में कहा था, पाँव और पैर के मुहावरों के अन्तर की ओर मेरा ध्यान पहले पहल प्रामाणिक कोश के पहले संस्करण की तैयारी के समय गया था और उसी समय मैंने दोनों का पार्थक्य दिखाने का प्रयत्न किया था। यद्यपि पहले संस्करण की भूमिका में मैंने इस बात की चर्चा की थी और इनके मुहावरों के सम्बन्ध में जो त्रुटियाँ और भूलें शब्द-सागर में हुई थीं उनकी ओर हिन्दी-जगत् का ध्यान आकृष्ट किया था, पर अभाग्यवश एक बहुत की विलक्षण बात यह हो गयी थी कि प्रामाणिक हिन्दी कोश के पहले संस्करण में लिपिक के दृष्टि-दोष के कारण 'पांति' शब्द के बाद के १८,२० शब्द छपने से छूट गये थे और इस प्रकार उसमें 'पाँव' शब्द आने ही नहीं पाया था। आदरणीय श्रीयुक्त श्रीप्रकाश जी ने (जो उन दिनों आसाम के राज्यपाल थे) जब भूमिकावाली उक्त चर्चा के आधार पर 'पाँव' और 'पैर' के मुहावरों के सूक्ष्म अन्तर देखने के लिए 'पाँव' शब्द ढूँढ़ा तो वह उन्हें मिला ही नहीं। उन्होंने मुझे लिखा। तब जाँच करने पर उक्त भूल का पता चला, जिससे मुझे हँसी भी आयी और लज्जित भी होना पड़ा। दूसरे संस्करण में जाकर इस भूल का सुधार हुआ।

इस सम्बन्ध में झगड़े की पहली बात तो यह है कि टाँग, पाँव और पैर के अर्थों का ठीक-ठीक क्षेत्र या मर्यादा ही अभी तक प्रायः अनिश्चित है। तो भी एक प्रकार से कहा जा सकता है कि 'टाँग' तो कमर से नीचे का वह सारा अंग है जिसे अँगरेजी में 'लेग' कहते हैं और 'पाँव' या 'पैर' मुख्यतः घुटने से नीचे का अंग है जिसे अँगरेजी में 'फूट' कहते हैं। जिस प्रकार अँगरेजी में कभी-कभी लोग अज्ञान या भूल से एक की जगह दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दी में भी कर जाते हैं, बल्कि यों कहना चाहिए कि अँगरेजी की अपेक्षा हिन्दी में इस अर्थ-मर्यादा का और भी कम ध्यान रखा जाता है और इसी लिए इनके अर्थों और मुहावरों का ठीक-ठीक पार्थक्य तथा विश्लेषण करना और भी कठिन हो जाता है। हिन्दी शब्द-सागर में जो सब मुहावरे 'पाँव' के अन्तर्गत आये हैं और 'पैर' के अन्तर्गत केवल 'पाँव' का निर्देश कर दिया गया है, उसका भी मुख्य कारण कदाचित् उक्त कठिनता ही रही है। हुआ यही है कि पहले 'पाँव' शब्द आया; और कोई विचार या विवेचन किये बिना सब मुहावरे उसी के अन्तर्गत रख दिये गये और बाद में जब 'पैर' सामने आया, तब उसमें 'पाँव' की ओर निर्देश कर दिया गया। इस प्रकार सारा जोर 'पाँव' पर आ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ा 'पैर' का भार बिलकुल हलका हो गया। पर राष्ट्र भाषा की प्रस्तुत मर्यादा का ध्यान रखते हुए अब इन दोनों का विश्लेषण इसलिए बहुत अधिक आवश्यक हो गया कि इससे कुछ भ्रम फैल सकता है। हो सकता है कि शब्द-सागर में 'पाँव' शब्द की प्रधानता और 'पैर' की गौणता देखकर हिंदी की प्रवृत्ति और स्वरूप से अनभिज्ञ अथवा अन्य भाषा-भाषी यह निष्कर्ष निकाल बैठें कि हिंदी में 'पाँव' ही मुख्य और मान्य रूप है, 'पैर' उसकी अपेक्षा गौण है। 'पाँव और 'पैर' के सम्बन्ध में ध्यान रखने की मुख्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'पाँव' अधिकतर पूर्वी क्षेत्रों में चलता है, और 'पैर' की चाल प्रायः पश्चिम में दिखाई देती है। जैसे—'पाँव' धरना या धारना (जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा—तुलसी) पूर्वी बोलचाल है और 'पैर' पकड़ना या रखना पश्चिमी है। पूरब में पाँव पखारते और पलोटते हैं, पश्चिम में 'पैर' धोते और दबाते हैं। धरती 'पाँव' तले से निकलती है और जमीन 'पैरों' तले से। यह ठीक है कि व्रजभाषा में भी 'पाँव' के प्रयोग मिलते हैं (अब यह बात कहो जनि ऊधो, पकरति पाँव तिहारे।—सूर) फिर भी दोनों के सम्बन्ध में मुख्य क्षेत्रीय अन्तर पूर्वी और पश्चिमी का है ही। एक बात और है। 'पाँव' वाले क्षेत्र में पाँव के और पैर वाले क्षेत्र मेंपैर के मुहावरे बने और तब दोनों क्षेत्रों के मुहावरों में आदान-प्रदान भी हुआ, विशेषतः दोनों क्षेत्रों के मध्य में या सीमा पर रहनेवाले लोगों ने दोनों के प्रयोगों और मुहावरों का खूब घाल-मेल किया। समानार्थी शब्दों के मुहावरों में इस प्रकार का हेर-फेर भाषा में प्रायः देखने में आता है। उर्दू वालों ने 'आसमान' के साथ जो अनेक प्रयोग और मुहावरे जोड़े थे, उनमें से अनेक अब 'आकाश' के साथ भी चलने लगे हैं। इन्हीं सब कारणों से 'पाँव'और 'पैर' के प्रयोगों के सम्बन्ध में एक ऐसी जटिल समस्या खड़ी हो गयी, जिसके निराकरण के लिए कुछ अध्ययन, छान-बीन और विचार की अपेक्षा है।

'पाँव' और 'पैर' के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक और बात है। हिंदी-जगत् के अपने पचास वर्षों के अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी के अनेक मरणोन्मुख शब्दों में 'पाँव' भी एक है। आज-कल 'पाँव' को छोड़कर 'पैर' के प्रयोग की प्रवृत्ति बराबर बढ़ रही है। इसके कई कारण हैं। 'पैर' कुछ तो पश्चिमी हिंदी का होने के कारण, कुछ उर्दू वालों की फसाहत के प्रभाव से और कुछ उच्चरण तथा लिखने के सुभीते के विचार से बराबर अधिक प्रचलित होता जा रहा है और इन्हीं के विपरीत कारणों से 'पाँव' का प्रयोग घटता जा रहा है। यही कारण है कि अब 'पाँव' के भी अनेक मुहावरों का प्रयोग या तो अविकल रूप में या परिष्कृत रूप में 'पैर' के साथ होने लगा है और प्रायः वही शिष्टसम्मत माना जाता है। ऊपर 'पाँव' और 'पैर' के पूर्वी तथा पश्चिमी प्रयोगों के जो कई उदाहरण दिये गये हैं, वही मेरे इस कथन की पुष्टि के लिए यथेष्ट हैं। आगे बढ़ने से पहले मैं 'पाँव' शब्द के रूप के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्बन्ध में भी एक बात बतला देना चाहता हूं। हिंदी शब्द-सागर में यह शब्द 'पाँव' रूप में नहीं, बल्कि 'पावँ' रूप में आया है। अर्थात् उसमें बीच वाली आकार की मात्रा पर चन्द्रबिंदु नहीं है, बल्कि अन्तिम 'व' पर है। ऐसा क्यों हुआ, इसकी एक लम्बी कहानी है। मैंने उसी समय इस रूप का विरोध किया था और कहा था कि जब 'आँव', 'काँव', 'गाँव', 'छाँव', 'ठाँव' आदि शब्दों पर चन्द्रविन्दु है, तब 'पाँव' में इसका अपवाद होना ठीक नहीं है। परन्तु मेरी यह सीधी सादी युक्ति शिक्षा और निरुक्त के बड़े-बड़े ढोंके लुढ़काकर कुचल दी गयी थी, और 'व' पर ही चन्द्रविन्दु लगाया गया था पर यह रूप हिन्दी में चला नहीं। चला वही सीधा सादा रूप जिसका मैंने समर्थन किया था। प्रामाणिक हिंदी कोश में मैंने यही रूप रखा था, और बृहत् हिन्दी कोश तथा दूसरे कई कोशों में भी यही रूप ठीक माना गया है, और इसी के अन्तर्गत सब अर्थ और मुहावरे आये हैं। यहाँ प्रसंगवश यह बतला देना भी उचित जान पड़ता है कि ऐसे शब्दों की अक्षरी के सम्बन्ध में उर्दू वाले हमारी अपेक्षा अधिक सावधान रहते हैं। वे ऐसे सभी शब्दों में अलिफ या आकार की मात्रा के बाद भी 'नून गुन्ना' (चन्द्रविन्दु का सूचक वर्ण) रखते हैं और अन्त में भी। अर्थात् उर्दू में लिखे हुए ऐसे शब्द उच्चारण की दृष्टि में 'गाँव' 'पाँव' आदि के रूप में लिखे जाते हैं। परन्तु हिन्दी में कई कारणों से, ऐसा नहीं होता, और उन कारणों में एक मुख्य कारण छापे के अक्षरों की कठिनाई भी है।

अब 'पाँव' और 'पैर' के मुहावरों की बात लीजिये धरना, धारना, पखारना, पलोटना का 'पाँव' से जो सम्बन्ध है उसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। बच्चे प्रायः पाँव-पाँव ही चलते हैं, पैर-पैर नहीं चलते। 'टिकना' और 'ठहरना' के साथ भी प्रायः पाँव का प्रयोग ही देखने में आता है। 'वहाँ उनके पैर नहीं टिके' सरीखे प्रयोग अब भले ही होने लगे हों, पर आज कल 'पैर नहीं ठहरते' सरीखे प्रयोग कम होते हैं, और प्रायः 'पाँव नहीं ठहरते' का ही अधिक प्रयोग देखा जाता है। प्राचीन काल में पाँव ही रोपा जाता था, पैर तो आज भी नहीं रोपा जाता। पाँव निकालना, पाँव फैलाना, पाँव धोकर पीना आदि प्रयोग बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। पर अब ऐसे प्रयोगों में 'पाँव' की जगह 'पैर' भी आने लगा है। लाक्षणिक रूप में और 'आधार' के अर्थ में हम अब भी यही कहते हैं––उसके पाँव नहीं हैं। यह नहीं कहते––उसके पैर नहीं हैं। इन सब प्रयोगों पर विचार करने से दो और बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि 'पाँव' में मुख्य भाव खड़े होने, चलने आदि का है, और दूसरे यह है कि–'पाँव' शब्द पूर्वी होने के अतिरिक्त अपेक्षाकृत अधिक पुराना भी है। इसके विपरीत 'पैर' में घुटने से नीचे का सारा भाग आ जाता है (यह बात 'पाँव' के सम्बन्ध में भी है) और इसी लिए उसकी सब बातें भी इस शब्द में समाविष्ट हैं। दोनों के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रयोगों आदि पर विचार करने से एक तीसरी बात यह भी जान पड़ती है कि 'पाँव' का प्रचलन कम हो रहा है और 'पैर' का प्रचलन बढ़ रहा है और यही कारण है कि 'पाँव' के बहुत से पुराने मुहावरे भी अब आकर 'पैर' में ही लगने लगे हैं। जहाँ पहले 'चाहे पाँव परो आयी' चलता था वहाँ अब लोग अपना काम निकालने के लिए दूसरों के पैरों पड़ने लगे हैं। 'पाँव पसारिये' की जगह अब लोग मौका देखकर पैर ही पसारते हैं। मेंहदी जहाँ पहले पाँवों में लगती थी वहाँ अब पैरों में लगने लगी है। उखड़ना, काँपना, डगमगाना, थरथराना, दबाना, पकड़ना, पूजना, घिसना, फूलना, रखना आदि क्रियाओं के साथ 'पाँव' और 'पैर' दोनों का प्रयोग देखने में आता है, पर 'पाँव' का कुछ कम और 'पैर' का कुछ अधिक। इन सब बातों से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि अब अपेक्षाकृत 'पैर' ही अधिक प्रचलित हो रहा है और इसी लिए अधिकतर मुहावरे भी पैर के साथ ही सम्बद्ध हो गये हैं। फिर भी 'पाँव' का अब तक कुछ प्राधान्य बना है और कुछ मुहावरे ऐसे भी हैं जो विशिष्ट रूप से 'पाँव' में ही लगे दिखाई देते हैं। यदि 'पाँव' और 'पैर' के सम्बन्ध में मेरे उक्त विचारों में किसी सुविज्ञ सज्जन को कोई भूल दिखाई दे तो वे मुझे अवश्य सूचित करने की कृपा करें। मैं उनका विशेष रूप से कृतज्ञ होऊँगा।

ऊपर 'पाँव' और 'पैर' के साथ ही एक जगह 'टाँग' की भी चर्चा आयी है। उसके सम्बन्ध में भी एक दो बातें यहाँ बतला देना अप्रासंगिक न होगा। 'टाँग' भी 'पाँव' की तरह पुराना (कम से कम 'पैर' से तो अवश्य अधिक पुराना) शब्द है। मुख्य, पुराना और प्रशस्त मुहावरा (किसी के काम में) 'टाँग अड़ाना' ही है। बाद में कहीं-कहीं उसकी जगह 'पाँव अड़ाना' का भी प्रयोग होने लगा, परन्तु 'पैर अड़ाना' अभी तक कम से कम मेरे ध्यान में तो नहीं आया। परंतु साधारण अर्थ में (लाक्षणिक अर्थ या मुहावरे के रूप में नहीं) हम 'टाँग तोड़ना' की जगह 'पाँव तोड़ना' भी कह जाते हैं और 'पैर तोड़ना' भी। जैसे--अब तुम वहाँ जाओगे तो मैं तुम्हारी टाँग (पाँव या पैर) तोड़ दूँगा लेकिन जहाँ हमें कहना होता है--अब आप अँगरेजी की भी टाँग तोड़ने लगे हैं, वहाँ 'टाँग की जगह कभी कोई 'पाँव' या 'पैर' का प्रयोग नहीं करता अर्थात् मुहावरे का यह रूप 'टाँग' से ही सम्बद्ध है। यहाँ 'पाँव' या 'पैर' की दाल नहीं गलती। एक पुराना मुहावरा है--किसी की टाँग के तले से निकल जाना, जिसका आशय है--हर तरह से अपनी हार या हीनता मान लेना। पर ऐसे अवसर पर कभी 'टाँग' की जगह 'पाँव' या 'पैर' का प्रयोग कोई नहीं करता। छोटे लड़के को डाँटने-डपटने के समय यही कहा जाता है--टाँग बराबर लड़का है पर कैसा बढ़-बढ़कर बोलता है। इसकी जगह 'पाँव' या 'पैर' का प्रयोग कोई नहीं करता। परन्तु स्वयं 'टाँग' शब्द भी और उससे सम्बद्ध विशिष्ट मुहावरे भी हैं मरणोन्मुख ही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुँह

'हाथ' के अर्थों और मुहावरों के सम्बन्ध में मेरा जो लेख 'आज' में प्रकाशित हुआ था उसके सम्बन्ध में कई सुयोग्य मित्रों ने चर्चा करते हुए इस विषय में अच्छा रस दिखाया है और मुझसे अनुरोध किया है कि शब्दों के अर्थों और मुहावरों के विवेचन का यह क्रम बराबर चलता रहना चाहिए। यद्यपि शब्दों के नये ढंग के विवेचन का काम मैं बराबर करता रहता हूँ, फिर भी नियमित रूप से बराबर चर्चा चलाते रहना मेरे लिए कई कारणों से सम्भव नहीं है। हाँ, जैसा कि मैं हाथ वाले लेख के अन्त में लिख चुका हूँ, शरीर के कुछ प्रमुख अंगों के अर्थों और मुहावरों का विवेचन मैं स्वयं दो दृष्टियों से हिन्दी-जगत् के सामने रखना चाहता हूँ। एक तो यह हिन्दीवालों की रुचि इस विषय की ओर बढ़े, और दूसरे यह कि भावी कोशकारों के लिए शब्दों के विवेचन का मार्ग प्रशस्त हो---आगे बननेवाले कोशों का रूप शब्दार्थ विवेचन और अर्थ-विभाजन के विचार से अधिक तर्क-संगत, निर्भ्रान्त, परिष्कृत तथा व्यवस्थित हो। 'शब्द-सागर' से अर्थ-विवेचन की जो परिपाटी आरम्भ हुई थी, उसके परम आदरणीय और श्लाघ्य होने में कोई सन्देह नहीं। परन्तु अब ऐसा समय आ गया है कि उस परिपाटी में नित्य बढ़नेवाली नयी आवश्यकताओं के विचार से परिवर्तन, संशोधन और सुधार होने चाहिए और उसकी सभी प्रकार की त्रुटियाँ दूर होनी चाहिए। हमारे आनेवाले कोशों का स्वरूप अद्यावधिक और अधिक कलात्मक होना चाहिए।

जैसा कि मैं पहले लेख में बता चुका हूँ, कोश के लिए मुहावरे लेते समय दो बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। एक तो यह कि उनका वर्गीकरण अधिक अर्थ-परक और तर्क-संगत होना चाहिए, दूसरे उन मुहावरों की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत, व्यापक तथा स्पष्ट होनी चाहिए। यों तो 'मुँह' शब्द के आठ नौ अर्थ हैं, परन्तु ऐसे मुख्य अर्थ दो ही हैं, जिनके साथ अधिकतर मुहावरे सम्बद्ध हैं। इनमें पहला अर्थ तो उस अंग के सम्बन्ध में है, जिससे हम खाते-पीते और बात करते हैं और दूसरा अर्थ सारे चेहरे से, जिसमें आँख और नाक भी सम्मिलित हैं, सम्बद्ध है। इसके सिवा कुछ गौण अर्थ भी हैं और उनके साथ भी कुछ मुहावरे हैं। साधारणतः मुँह के मुहावरों का 'शब्द-सागर' में बहुत कुछ ठिकाने का वर्गीकरण हुआ है। फिर भी उसमें की कुछ बातें विचारणीय हैं। उसमें मुँह का दूसरा अर्थ है–मनुष्य का मुख विवर। पर इसके पेटे में कुछ ऐसे मुहावरे भी आ गये हैं, जो मनुष्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या उसके मुख-विवर से नहीं, बल्कि पशु-पक्षियों के मुख-विवर से नहीं, सम्बन्ध रखते हैं। जैसे मुँह डालना, मुँह देना आदि मुहावरों का प्रयोग केवल पशु-पक्षियों सम्बन्ध में होता है। मनुष्य न तो किसी चीज में मुँह डालता है, न देता है। वह तो मुँह में चीज डालता या रखता है। इसी अर्थ के अंतर्गत 'मुँह का कच्चा' और 'मुँह का कड़ा' ऐसे पद (मुहावरे नहीं) भी हैं, जिनका प्रयोग एक ओर मनुष्यों के लिए भी होता है और दूसरी ओर पशुओं के लिए भी। इसके सिवा मुँह चलाना, मुँह फैलाना या बाना आदि कुछ ऐसे मुहावरे भी हैं जो मनुष्यों के लिए भी और पशुओं के लिए भी समान रूप से समान अर्थ में प्रयुक्त होते या हो सकते हैं। ऐसी दशा में यह तो कहा' ही नहीं जा सकता कि 'मुँह' का मनुष्यों से सम्बद्ध अर्थ अलग दिया जाय और पशु-पक्षियों से सम्बद्ध अर्थ अलग दिया जाय और पशु-पक्षियों से सम्बद्ध अर्थ अलग रहे और तब उनके मुहावरे अलग-अलग दिये जायँ। इसलिए ऐसी कठिनाई से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि स्वयं 'मुँह' शब्द की व्याख्या मनुष्य के मुख-विवर तक ही परिमित न रखकर इतनी विशद और व्यापक रखी जाय कि उसके अन्तर्गत दोनों पक्षों के पद और मुहावरे आ सकें।

अब इसी बात पर एक दूसरी दृष्टि से चार कीजिए। एक प्रसिद्ध मुहावरा है—मुँह मारना। पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में इसका भी प्रायः वही अर्थ होता है जो मुँह डालना (या देना) का है। यह प्रयोग पहले अर्थ (खाने-पीने के अंग) से सम्बन्ध रखता है और इसलिए पहले अर्थ के साथ इसका अर्थ रहना उचित ही है। अब एक और मुहावरा है—किसी का मुँह मारना। कोशों में इसके जो अर्थ मिलते हैं, वे अधूरे और अव्याप्ति-दोष से युक्त हैं। लाक्षणिक रूप से इसका वास्तविक अर्थ है या होना चाहिए—(क) किसी को दबाने, नीचा दिखाने, रोकने या वशवर्ती करने के लिए कोई बलसूचक या उत्कट कार्य करना। और (ख) ऐसी उत्कृष्ट स्थिति में होना कि सहज में किसी को परास्त या लज्जित करके हीन सिद्ध किया जा सके। इनमें पहले अर्थ का उदाहरण है—हजार रुपये की थैली देकर उनका भी मुँह मार दो। और दूसरे अर्थ का उदाहरण है—यह कपड़ा सूती होने पर भी रेशमी का मुँह मारता है। तात्त्विक दृष्टि से यह अर्थ प्रकार खाने-पीने वाले अंग से तो अलग है ही सारे चेहरे वाले दूसरे अर्थ से भी इस लिए अलग है कि इसका प्रयोग केवल लाक्षणिक रूप में और वह भी केवल पौरुष, बल आदि सूचित करने के प्रसंग में होता है। इसलिए यह मुहावरा पहले अर्थ के साथ नहीं बल्कि 'मुँह' के दूसरे अर्थात् चेहरेवाले अर्थ के साथ रहना चाहिए। अब इसी वर्ग का एक और मुहावरा देखिये। हम कहते हैं(क) पहले अपना मुँह तो देखो। और (ख) यहाँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भला किसका मुँह है जो तुम्हारे सामने आवे। ऐसे अवसरों पर 'मुँह' शब्द का प्रयोग बिना किसी विशिष्ट क्रिया के सहयोग के होता है। इसमें ध्यान देने की दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि ऐसे प्रयोग अर्थ-विवेचन के समय अपने स्वतन्त्र अर्थ-विभाग की अपेक्षा रखते हैं और दूसरे यह कि विशिष्ट क्रिया के अभाव के कारण मुहावरों में इनका अन्तर्भाव नहीं होना चाहिए। इसी लिए 'मुँह' शब्द के अपने नये विवेचन में मैंने इस दृष्टि से उसके दो तीन नये अर्थ बढ़ाये हैं। पुरानी परिपाटी के अनुसार ऐसे प्रयोगों को मैंने मुहावरों के अन्तर्गत नहीं माना है। एक और प्रसिद्ध मुहावरा है, जो 'शब्द सागर' में 'मुँह धो रखना' के रूप में आया है। पर वास्तविक बात यह है कि इसका प्रयोग सदा विधि के रूप में ही होता है, अर्थात् सदा दूसरे के प्रति और इस रूप में होता है—'तुम मुँह धो रखो' या 'आप मुँह धो रखें' (रखिये)।' हम कभी यह नहीं कहते—'हमने मुँह धो रखा या वह 'मुँह धो लेगा आदि। और इस दृष्टि से कोशों में भी इस मुहावरे का रूप रहना चाहिए—मुँह धो रखो (रखिये या रख)। यदि ऐसा न करके इस मुहावरे का रूप 'मुँह धो रखना' ही रखा जायगा तो साधारण शिक्षितों और अन्य भाषा-भाषियों में इस रूप के कारण बहुत भ्रम फैलेगा और सम्भव है कि वे इसका प्रयोग उसी प्रकार भ्रमात्मक तथा अशुद्ध रूपों में करने लगें, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। कोशकार एक छोटी सी भूल करके दूसरों से बड़ी-बड़ी भूलें करा सकता है और प्रकारांतर से भाषा का रूप बिगाड़ने में सहायक हो सकता है। अतः कोश-रचना के क्षेत्र में अग्रसर होने के समय शब्दों के अर्थों, प्रयोगों, मुहावरों आदि का ऐसा ही सूक्ष्म विचार और विवेचन अपेक्षित है।

'हाथ' की ही तरह 'मुँह' के मुहावरे भी कई वर्गों में विभक्त हैं। उसके कुछ मुहावरे खान-पान से, कुछ बोल-चाल से और कुछ केवल मनोभावों से सम्बद्ध हैं। 'मुँह जूठा करना', 'मुँह मीठा करना', मुँह से दूध की बू आना' आदि केवल खान-पान से सम्बद्ध हैं, और 'मुँह बन्द करना', 'मुँह बाँधकर बैठना', 'मुँह में लगाम न होना', 'मुँह सीना', 'मुँह से फूल झड़ना', 'किसी के मुंह की बात छीनना' आदि का अन्तर्भाव बोल-चाल में होता है। 'मुँह चिढ़ाना या बनाना', 'मुँह में लहू लगाना', 'मुँह में कीड़े पड़ना' 'किसी के सामने मुँह फैलाना', 'मुँह में पानी भर आना' आदि मुहावरे ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध मुख्यतः मनोभावों से है। परन्तु कुछ मुहावरे ऐसे भी हैं जो एक ओर तो खान-पान से भी सम्बद्ध हैं और दूसरी ओर बोल-चाल से भी। जैसे 'मुँह चलना या चलाना',' मुँह लगना या लगाना' आदि। हम कहते हैं—(क) जब देखो, तब तुम्हारा मुँह चलता रहता है। और (ख) अब तो तुम बड़ों के सामने भी मुँह चलाने लगे। इनमें से पहला उदाहरण खान-पान से और दूसरा उद्दण्डता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्ण वाचालता से सम्बद्ध है। इसी प्रकार हम कहते हैं—(क) आज-कल तो बिस्कुट तुम्हारे मुँह लगा है। और (ख) नया नौकर अभी से मुँह लगने लगा है। इन उदाहरणों में भी खान-पान और वाचालतावाला अन्तर है। अर्थों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में अब तक मैंने जो बातें कही हैं उनका ध्यान रखते हुए यह स्पष्ट ही है कि ऐसे मुहावरे एक जगह रखकर उनके दोनों अर्थ एक साथ देना न तो कलात्मक ही है न तर्कसंगत ही और न सूक्ष्म विवेचन का परिचायक ही। अतः इस प्रकार के मुहावरे अपने-अपने स्वतन्त्र वर्ग विभाग में आने चाहिएँ।

अब मुहावरों के अर्थ या व्याख्याएँ लीजिए। अपना-सा मुँह लेकर रह जाना (या लौट आना) एक प्रसिद्ध मुहावरा है। साधारण कोशों में इसका अर्थ इस प्रकार पाया जाता है—लज्जित या चुप होकर रह जाना। 'मुँह ताकना' का अर्थ प्रायः कोशों में इस प्रकार मिलता है—चकित होकर मुँह देखना या कुछ न कर सकने के कारण चुपचाप बैठना आदि। परन्तु क्या इतने से ही इन मुहावरों के ठीक-ठीक आशय प्रकट हो जाते हैं? शायद बिलकुल नहीं। इनकी व्याख्याएँ क्रमात् कुछ इस प्रकार होनी चाहिएँ—(क) निराश, विफल या हतोत्साह होने के कारण दीन या लज्जित भाव से चुपचाप रह जाना (या लौट आना)। और (ख) अकर्मण्य, असमर्थ चकित या विवश होकर अथवा आशा, प्रतीक्षा आदि में चुपचाप किसी ओर (या किसी की ओर) देखते रहना आदि। 'मुँह में पानी भर आना' या 'मुँह से लार टपकना' आदि के जो साधारण अर्थ-कोशों में मिलते हैं, वे स्वयं व्याख्या की दृष्टि से तो अपूर्ण हैं ही, इस दृष्टि से भी कुछ अपूर्ण हैं कि व्याख्याओं में इस बात का संकेत नहीं मिलता कि ये मुहावरे किस आधार पर अथवा कैसी क्रियाओं के अनुकरण पर बने हैं। यदि पहले मुहावरे की व्याख्या के साथ चीते भेड़िये आदि की प्रवृत्ति का और दूसरे मुहावरे के साथ खाने-पीने की चीज देखने पर मुँह में होनेवाली विशिष्ट शारीरिक प्रक्रिया का भी संकेत कर दिया जाय तो जिज्ञासुओं को ठीक आशय समझने में अधिक सहायता मिलेगी या अधिक सुगमता होगी। हिंदी के भावी आदर्श तथा प्रामाणिक कोशों में इस प्रकार की नयी और सूक्ष्म बातों की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा-सी-से

हिंदी में समानता या सादृश्य का भाव सूचित करने के लिए जो 'सा' प्रचलित है, वह जितना ही छोटा है, उतना ही भाव-गर्भ भी है और उतना ही विलक्षण भी। यद्यपि बहुत दिन पहले अपनी पुस्तक 'अच्छी हिन्दी' में मैंने उसके कुछ सूक्ष्म भावों के निरूपण का प्रयत्न किया था, पर इधर जब 'मानक हिन्दी-कोश' का सम्पादन करते समय यह शब्द मेरे सामने आया और मैंने इस पर विशेष अध्ययन और विचार किया, तब मुझे इसमें और भी कई प्रकार की विलक्षण अर्थ-छटाएँ दिखायी दीं। यह लेख उन्हीं सूक्ष्म अर्थ-छटाओं का दिग्दर्शन कराने के लिए है।

'हिन्दी' शब्द सागर ने इस अव्यय को सं० सादृश्य अथवा सह से व्युत्पन्न माना है, परन्तु मेरी समझ में यह सीधे सम् या सम से व्युत्पन्न है। 'शब्द-सागर' में इसके दो ही अर्थ हैं—१—समान, तुल्य, सदृश, बराबर। जैसे—उसका रंग तुम्हीं-सा है। और २—एक प्रकार का मान-सूचक शब्द। जैसे—बहुत-सा, थोड़ा-सा, जरा-सा। परन्तु 'सा' का ठीक-ठीक मूल्यांकन इन दो अर्थों से नहीं होने पाता और इसकी आत्मा के अनेक अंग या स्तर छिपे और दबे ही रह जाते हैं। यह ठीक है कि 'सा' मूलतः अव्यय ही है और मुख्यतः समानता या सादृश्य का ही बोधक है, पर पहली बात यह है और दूसरे यह कि वह निरी समानता या सादृश्य का ही बोधक नहीं है। जब हम कहते हैं—(क) कमल-सी आँखें, या (ख) फूल-सा शरीर, तब उनमें समानता या सादृश्यवाला भाव ही रहता है। पर जब हम कहते हैं—(क) 'धूर्तों के से काम' या (ख) 'बच्चों की-सी बातें। तब यह ढंग, तरह या प्रकार के क्षेत्र का परिचायक होता है। फिर जब हम कहते हैं—(क) वहाँ बैठे-बैठे मुझे नींद-सी आने लगी या (ख) वह एक मरियल-सा टट्टू ले आया, तब यह पूरे सादृश्य का वाचक नहीं रह जाता, बल्कि सादृश्य होने पर आंशिक अल्पता, न्यूनता या हीनता वाले भाव का सूचक हो जाता है। जब हम कहते हैं—तुम्हें इनमें से कौन-सी पुस्तक चाहिए? तब यह समानता या सादृश्य के क्षेत्र से निकल कर अवधारण या निश्चयवाले क्षेत्र में चला जाता है, क्योंकि हम निश्चित रूप से यह जानना चाहते हैं कि बहुत-सी पुस्तकों में से कौन पुस्तक अपेक्षित है। और जब हम कहते हैं—जरा-सा नमक, थोड़े-से आदमी या बहुत-सी बातें तब यह किसी अनिश्चित मात्रा या मान पर जोर देने के लिए प्रयुक्त होता है। कुछ अवस्थाओं में इसका प्रयोग यह सूचित करने के लिए भी होता है कि जो कुछ कहा जा रहा है, वह पूरा-पूरा सदृश न होने पर भी चाहे थोड़ा हो या बहुत,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर है किसी न किसी रूप में सदृश ही। जैसे—ग्रामवात के रोगियों के शरीर पर अँगुली रखने से वहाँ गड्ढा-सा बन जाता है।

इस अव्यय की एक और विशेषता यह है कि इसके रूप में विकार भी होते हैं, अर्थात् इसके रूप 'सी' और 'से' भी होते हैं। कारण यही है कि इसका प्रयोग संज्ञाओं के साथ भी होता है और विशेषणों के साथ भी और इसी लिए संज्ञाओं और विशेषणों के लिंग तथा वचन के अनुसार ही इसके रूप 'सी' और 'से' हो जाते हैं। इसके सिवा कुछ अवसरों पर यह अव्यय विभक्तियों के साथ भी लगता हैं। जैसे—(क) घर का-सा हार, (ख) मूर्खों का-सा आचरण। विभक्तियाँ विकारी होती हैं और उनके सम्पर्क से यह अव्यय भी विकारी हो जाता है।

अव्यय के अतिरिक्त 'सा' का प्रयोग प्रत्यय के रूप में भी होता है जिसका उल्लेख शब्द-सागर में नहीं है। यथा—ऐसा, कैसा, जैसा और वैसा में 'सा' प्रत्यय ही है और यह भी अव्यय 'सा' की तरह सम् या सम से व्युत्पन्न है, बल्कि यों कहना चाहिए कि वह अव्यय ही विकसित होकर प्रत्यय बन गया है, क्योंकि वह उसी अर्थ का बोधक है जो 'सा' अव्यय का मूल अर्थ है। यथा—ऐसा का अर्थ होगा—इस-सा; कैसा का अर्थ होगा—किस-सा और वैसा का अर्थ होगा—उस-सा।

अव्यय और प्रत्यय के सिवा 'सा' का एक और रूप संज्ञावाला भी है, जो संगीत के क्षेत्र में प्रचलित है और जो षड़ज स्वर का वाचक तथा संक्षिप्त रूप है। यद्यपि प्रस्तुत प्रसंग में 'सा' के इस संज्ञावाले रूप की चर्चा अनावश्यक है, फिर भी इसका उल्लेख केवल इस दृष्टि से किया गया है कि 'शब्द-सागर' में इसके इस रूप का विवेचन भी दृष्टि-दोष से छूट गया है।

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हाथ

यों तो बहुत से शब्दों के साथ थोड़े बहुत मुहावरे होते हैं, पर सब से अधिक मुहावरे शरीर के मुख्य अंगों से सम्बद्ध हैं। 'आँख' के साथ जितने मुहावरे लगे हैं, उतने शायद और किसी अंग के वाचक शब्द के साथ न होंगे। कारण भी स्पष्ट है। संसार के सब काम आँखों के सहारे चलते और होते हैं। इसी से कहते हैं--बाबा आँख बड़ी न्यामत हैं। दूसरा स्थान कदाचित् 'हाथ' के मुहावरों का है और यह भी इसी लिए कि 'आँख' के बाद काम की चीज हाथ ही है। पेट, पैर, मुँह, सिर आदि का स्थान इन दोनों के बाद आता है।

'हिंदी शब्द-सागर' के सम्पादन के समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि शब्दों के अर्थ तो स्पष्टता के लिए अलग अलग रहें ही, मुहावरों का भी अर्थों के अनुसार ही वर्गीकरण हो--किसी शब्द का जो मुहावरा जिस अर्थ के साथ सम्बद्ध हो वह उसी अर्थ के अन्तर्गत दिया जाय। ठीक-ठीक और स्पष्ट रूप से अर्थों का ज्ञान या बोध कराने का यही वैज्ञानिक ढंग है, परन्तु उस समय कई कारणों से कुछ शब्दों में इस नियम का ठीक तरह से पालन नहीं हो सका था। इस बात की ओर मेरा ध्यान उस समय विशेष रूप से गया जब मैं प्रामाणिक हिंदी कोश के लिए फिर से शब्द दोहराने लगा था। उस समय मैंने देखा कि 'पाँव' में ही सब मुहावरे आ गये हैं और पैर में केवल एक मुहावरा है। बाकी मुहावरों के लिए उसमें 'पाँव' की ओर संकेत कर दिया गया था। मैंने विचार करके देखा तो पता चला कि कुछ मुहावरे केवल 'पाँव' से सम्बद्ध हैं, कुछ केवल 'पैर' से, और कुछ ऐसे भी हैं जो दोनों के साथ चलते हैं। इसलिए मैंने इस प्रकार के थोड़े से मुहावरों का कुछ वर्गीकरण किया था और इस बात की ओर प्रामाणिक हिंदी कोश की भूमिका में लोगों का ध्यान भी आकृष्ट किया था। इधर हाल में मेरा ध्यान 'हाथ' शब्द की ओर गया और मुझे उसमें अर्थों के विचार से भी और मुहावरों के विचार से भी कई प्रकार की अपूर्णताएँ और त्रुटियाँ दिखाई दीं। मुझे यह भी ध्यान आया कि इस प्रकार की अपूर्णताएँ और त्रुटियाँ इसी लिए रह गयीं कि वह विषय बहुत ही जटिल था और बहुत कुछ परिश्रम, विचारशीलता तथा समय की अपेक्षा रखता था। इसके सिवा उस समय के लिए उतना ही यथेष्ट भी समझा गया था जितना हुआ था या जितना हो सकता था। पर हिंदी के वर्तमान गौरव और मर्यादा के विचार से ऐसी त्रुटियाँ दूर करने का प्रयत्न होना चाहिए। यही सोचकर मैंने केवल 'हाथ'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्द पर पूरा एक सप्ताह लगाया और अन्त में उसके विवेचन को एक नया रूप दिया। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मेरा यह विवेचन सर्वथैव त्रुटि-रहित और पूर्ण है, पर पहले से बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ अवश्य है। वह सारा विवेचन यहाँ दिया नहीं जा सकता पर इस सम्बन्ध में मुझे जो कई मनोरंजक और महत्त्व की बातें मिलीं उनकी कुछ चर्चा कई दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

पहले अर्थों की बात लीजिए। शब्द-सागर में 'हाथ' के कुल पाँच अर्थ हैं और हिंदी के सभी कोशों में इसी परम्परा का अनुकरण और पालन हुआ है पर मेरे विवेचन में यह संख्या पन्द्रह तक जा पहुँची है। कुछ तो यह अर्थ विस्तार मुहावरों के विचार से हुआ है और कुछ लोक में प्रचलित प्रयोगों के विचार से। वर को कन्या का हाथ पकड़ाना या बाल-बच्चों का हाथ अपने भाई या मित्र को पकड़ाना आदि अनेक ऐसे मुहावरे हैं जिनके विचार से 'हाथ' शब्द में कुछ नये अर्थ जोड़े जाने चाहिएँ। इसके सिवा हम कहते हैं--(क) ज्योतिषी ने हाथ देखकर बहुत-सी विलक्षण बातें बतलायीं। (ख) वैद्यजी ने हाथ देखकर वास्तविक रोग बतला दिया। इन दोनों प्रसंगों में 'हाथ' के दो अलग-अलग अर्थ हैं, फिर स्टेशन पर हम सिकन्दरे का भी हाथ देखते हैं और चौरस्ते पर मार्ग या दिशा का सूचक अंकित हाथ। फिर हाथ के कुछ मुहावरे केवल कलाई के बाद वाले भाग (हथेली और उँगलियों से सम्बद्ध हैं) और कुछ कन्धे से उँगलियों तक समूचे अंग से। और इस दृष्टि से भी 'हाथ' का एक नया अर्थ निकल आता है। 'हाथ' के ये सभी अर्थ ऐसे हैं जिनका समावेश हमारे कोशों में विस्तृत, स्पष्ट तथा स्वतन्त्र रूप से होना चाहिए।

'हिंदी शब्द-सागर' में और फलतः अधिकतर दूसरे कोशों में भी 'हाथ' के पहले अर्थ के बाद ही सब मुहावरे एक साथ मिलते हैं। परन्तु कोशों में अर्थों का जिस प्रकार का वर्ग-विभाग होता है, उसी प्रकार का मुहावरों का भी वर्ग-विभाग होना चाहिए। साधारण अवस्था में इस प्रकार का वर्ग विभाग करना उतना कठिन नहीं होता। परन्तु आँख, मुँह, हाथ सरीखे शब्दों में मुहावरों का ऐसा वर्ग-विभाग दो कारणों से बहुत ही कठिन होता है। पहली बात तो यह है कि इन शब्दों से सम्बद्ध सैकड़ों मुहावरों को अलग अलग छाँटकर यह निश्चित करना बहुत कठिन होता है कि कौन-सा मुहावरा किस अर्थ के साथ रखा जाय। दूसरे, कुछ मुहावरे ऐसे भी होते हैं, जिनके अलग-अलग प्रसंगों में और अलग अलग अर्थों के विचार से अलग-अलग आशय होते हैं, और इसी लिए ऐसे मुहावरों का वर्ग-विभाग करना कोशकार के लिए बहुत ही कठिन होता है। वस्तुतः इसी प्रकार की कई बड़ी-बड़ी कठिनाइयों ने 'शब्द-सागर' के सम्पादकों को ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में बहुत कुछ विवश कर दिया था, जिनके साथ सैकड़ों मुहावरे लगे थे। उस समय यह भी सोचा गया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था कि एक साथ सब मुहावरे एक ही जगह दे देने से जिज्ञासुओं को उन्हें ढूँढ़ने में सुभीता होगा। पर जिज्ञासुओं का सुभीता ही तो सब कुछ नहीं है। शब्दों के विवेचन का ढंग भी वैज्ञानिक होना चाहिए और इस विवेचन में कला की भी पूर्णता होनी चाहिए। फिर जिज्ञासुओं का बौद्धिक तथा साहित्यिक स्तर ऊँचा करना और उन्हें शब्दों के सूक्ष्म अर्थ-भेद, आशय-भेद, प्रयोग-भेद आदि बतलाना भी अच्छे कोशकार का मुख्य कर्तव्य होता है। जटिल सभी प्रकार की कठिनाइयाँ सदा सामने आती ही रहती हैं। कौशल और परिश्रम तो उन्हें दूर करके रास्ता साफ करने में ही दिखाई देता है। इसलिए हमारे भावी कोशकारों को ऐसी कठिनाइयों से घबराना नहीं चाहिए और आगे बढ़कर नया रास्ता निकालने के लिए तैयार रहना चाहिए।

अब पहले कुछ उदाहरण लीजिए। 'हाथ' के संबंध का एक बहुत प्रसिद्ध मुहावरा है—'हाथ उठाना।' हम किसी को नमस्कार या सलाम करने के लिए भी हाथ उठाते हैं और किसी को मारने के लिए भी हाथ उठाया जाता है और कोसने के लिए भी। 'हाथ दिखाना' का उल्लेख ऊपर ज्योतिषी और वैद्य के प्रसंग में हो ही चुका है। एक और प्रसंग है जिसमें 'हाथ दिखाना' का कुछ विलक्षण प्रयोग होता है। हम कहते हैं—उस लड़ाई में उन्होंने खूब हाथ दिखलाये। यहाँ 'हाथ' का अर्थ है—अभ्यास, कौशल,दक्षता आदि के विचार से हाथों द्वारा होनेवाला कोई अनोखा या बड़ा काम। ऐसा ही एक और मुहावरा है—हाथ मारना। अलग अलग प्रसंगों में इसके भी कई अर्थ होते हैं। किसी से प्रतिज्ञा करने या वचनबद्ध होने केसमय(हाथ पर) हाथ मारा जाता है। दूकान पर रखी हुई किसी चीज पर उचक्का हाथ मारता है। आज-कल और भी न जाने कितने प्रकार से लोग कहाँ कहाँ हाथ मारकर माला-माल होते हैं। कहा-सुनी या तकरार होने पर आगे बढ़कर विपक्षी को भी दो-चार हाथ मारे जाते हैं। साधारण जिज्ञासुओं के सुभीते के विचार से ऐसे मुहावरों के सब अर्थ एक साथ दे देना भले ही ठीक मान लिया जाय, पर अर्थ-विचार के उच्चतर सिद्धतों तथा कोश-कला की दृष्टि से ऐसा विवेचन कभी तर्क-संगत, वैज्ञानिक और व्यवस्थित नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि आज-कल उन्नत तथा सम्पन्न भाषाओं के ऊँचे दरजे के शब्द कोशों में पहली परिपाटी का त्याग और दूसरी परिपाटी का आदर देखने में आता है। और मेरी तुच्छ बुद्धि में हिंदी के अच्छे कोशों में भी यही परिपाटी अपनायी जानी चाहिए।

'हाथ' के अर्थों का विवेचन करते हुए ऊपर कहा जा चुका है कि हाथ के कुछ मुहावरे हथेली और उँगलियोंवाले अंश से सम्बद्ध हैं और कुछ मुहावरे सारी बाँह अर्थात् कन्धे से उँगलियों तक के समूचे अंग से। इनमें से पहले वर्ग के मुहावरे ही बहुत अधिक हैं और दूसरे वर्ग के मुहावरे अपेक्षाकृत कम हैं। पहले वर्ग के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

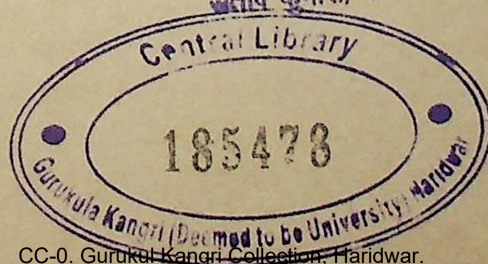
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुहावरों के भी कई भेद, उप-भेद अथवा उपवर्ग हैं। बहुत से मुहावरे बहुत साधारण कार्य या व्यापार के सूचक हैं। जैसे--हाथ जोड़ना, हाथ मलना, हाथ मिलाना, (किसी के मुँह पर) हाथ रखना, हाथ-पर हाथ रखकर बैठना, (किसी को) हाथों हाथ लेना आदि। इसके बाद कुछ ऐसे मुहावरे आते हैं जो कर्ता की विशिष्ट क्रिया शीलता या कर्तृत्व के सूचक होते हैं। जैसे--(किसी काम में) हाथ डालना, हाथ धोकर (किसी व्यक्ति के) पीछे पड़ना। (किसी का) हाथ पकड़ना, हाथ पैर मारना, हाथ पैर हिलाना, हाथ बटाना, (किसी काम में दूसरे का) हाथ रोकना, (कोई काम करने में दूसरे का) हाथ रोकना आदि। एक तीसरा विभाग मनुष्य की आर्थिक स्थिति, प्राप्ति, हानि लाभ आदि से सम्बद्ध है। जैसे--हाथ खाली होना, हाथ गरम होना, हाथ तंग होना, हाथ दबाना, हाथ दबाकर खर्च करना, हाथ फैलाना या पसारना, हाथ रगना, हाथ लगाना आदि। एक और चौथा विभाग भी है जो अधिकार, प्रभाव, स्वत्व आदि से सम्बन्ध रखता है। जैसे--हाथ कटना, (किसी के नीचे) हाथ दबाना, (किसी चीज से) हाथ धोना, (किसी का) हाथ पकड़ना (आश्रय या रक्षा में लेने के विचार से), (किसी के) हाथ पड़ना। (नाहि त परि हौ जम के हाथ।—कबीर), (किसी के) हाथ बिकना (एक धनी के हाथ बिकानी–मीराँ), हाथ से बे हाथ होना आदि।

और मेरी समझ में हाथ के मुहावरों का ऐसा वर्गीकरण ही अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। मानक हिंदी कोश में मैंने यही वर्ग-प्रकार रखा है

इस प्रकार यदि अन्य शब्दों के सम्बन्ध में अर्थ और मुहावरों की दृष्टि से विचार किया जाय तो उनका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो सकता है और अनेक उपयोगी तथ्य सामने आ सकते हैं।

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

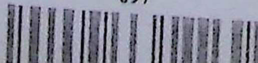
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

R.P.S पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या 097 ARY-S आगत संख्या 185478

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वितरक

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो. बॉक्स नं० ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी-१.

लोक भारती
१५.ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१.



कवर-मुद्रक : विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा०) लि०, मानमन्दिर, वाराणसी-१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.